अनीति की राह पर

[संयम बनाम भोग पर महात्मा गांधी के लेख]

सर्वोदय साहित्य-माला : १६वाँ ग्रन्थ

सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली

शाखाएँ

दिल्ली लखनऊ इन्दौर वर्धा : कलकत्ता : इलाहाबाद

प्रकाशक की ओर से

नीति-अनीति का विषय ऐसा नही जो रुपये-आने-पाई मे आँका जा सके, बल्कि जीवन का शाश्वत धर्म है। जो व्यक्ति या राष्ट्र विवेक-पूर्वक इसका निर्णय करके नीति-मार्ग पर चलता और अनीति के रास्ते से बचता है, वही सच्चा ज्ञानी है और वही खुद ऊँचा उठता तथा दुनिया को ऊँचा उठाता है। इसके विपरीत, अपने अज्ञान से, या जानते हुए भी अमल करने का आलस्य करके, अथवा अपने अहकार मे सत्यम की अपेक्षा करके, अनीति या असयम का रास्ता पकडता है, वह आगे-पीछे खुद तो गढे मे गिरता ही है, साथ ही सृष्टि को भी पीछे की ओर ढकेलता है। नीति-अनीति का या ज्यादा व्यापक रूप मे कहे तो सत्-असत् का, सघर्ष सदा ही चलता रहता है। इसमें जो जितना ऊँचा उठता है वह उतना ही पहुँचा हुआ है, वही श्रेष्ठ पुरुप या महात्मा है। इसके विपरीत जो जितना नीचे जाता है, वह उतना ही 'साधारण' है, और जो ज्यादा नीचा चला जाये उसे दुनिया पापी कहती है। इसीलिए हरेक का फर्ज है कि वह नीति के महत्त्व को समझे और अपने से आगे वढे हुओ के अनुभव से प्रोत्साहन पाकर अपने प्रयत्न से उसके मार्ग पर अग्रसर हो। इसके लिए इस सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तको का अध्ययन और मनन वहुत वडा सहारा है। कहना नहीं होगा कि 'अनीति की राह पर' एक ऐसा ही सहारा है।

आधुनिक युग के सवसे वडे नीतिवादी महात्मा गाधी के लेखो का यह सग्रह है और इसकी लोकप्रियता इसीसे सिद्ध है कि प्रस्तुत सस्करण इसका पाँचवाँ सस्करण है। इस वार सारी पुस्तक को मूल से मिलाकर सशोधित व सम्पादित किया गया है। इसके गुजराती व अग्रेजी के

नये-से-नये सस्करणो मे जो-जो नये अध्याय व परिशिष्ट मिले प्राय वे सव भी इसमे जोड दिये गये है। इस प्रकार, इस वार, यह अवतक के गुजराती व अग्रेजी सस्करण से भी ज्यादा सम्पूर्ण होगयी है। अतएव, हमे पूरी आशा है कि यह सस्करण पाठको को और भी ज्यादा रुचिकर होगा।

निर्देशिका

अनीति की राह पर

अनीति की राह पर

१

विषय-प्रवेश

कृत्रिम उपायो से सन्तान-वृद्धि रोकने के पक्ष मे जो लेख देशी समाचार-पत्रो मे निकलते है, कृपालु मित्र उनकी कतरने मेरे पास भेजते रहते है। नौजवानो से उनके निजी जीवन-सम्बन्धी मेरा पत्र-व्यवहार भी बढता जा रहा है। परन्तु उन सब समस्याओ को, जो इस पत्र-व्यवहार से उठती है, मै इन पृष्ठो मे हल नही कर सकता। यहाँ तो कुछ की ही विवेचना हो सकती है। अमेरिकन मित्र भी मेरे पास इस सम्बन्ध का साहित्य भेजते रहते है, और कुछ तो मुझसे इस कारण नाराज भी है कि मै सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपायो का विरोध करता हूँ। उन्हे रज है कि बहुत-सी बातो मे ऐसा बढा-चढा सुधारक होते हुए भी सन्तति-निग्रह के मामले मे मै मध्ययुग के-से विचार रखता हूँ। फिर मै यह भी देखता हूँ कि कृत्रिम उपायो के समर्थको मे सब देशो के कुछ बडे-बडे विचारवान् स्त्री-पुरुष भी है।

यह सब देखकर मैने सोचा कि सतति-निग्रह के कृत्रिम उपायो के पक्ष मे कोई जोरदार दलीले ज़रूर होगी और इसलिए मुझे इसपर अधिक विचार करना चाहिए। मै इस समस्या पर विचार कर ही रहा था, और इस विषय का साहित्य पढने के विचार मे ही था, कि मुझे 'टुवड्र्स मॉरल

बेंकरप्ट्सी'[1] नामक एक अंग्रेजी पुस्तक पढने को मिली, जिसमें इस प्रश्न पर वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है। मूल पुस्तक फ्रांसीसी भाषा में है और श्री पाल ब्यूरो उसके लेखक है। पुस्तक का जो नाम फ्रेन्च भाषा मे है उसका शब्दार्थ है 'भ्रष्टाचार'।

इस पुस्तक को पढकर मुझे लगा कि लेखक के विचारो पर अपनी सम्मति देने से पहले मुझे उचित है कि इन उपायो के समर्थक जो मुख्य-मुख्य ग्रन्थ है उन सबको पढलूं। इसलिए मैंने 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी' से इस विषय पर जो कुछ ग्रन्थ मिल सके मँगाकर पढे। काका कालेलकर ने, जो इस विषय का अध्ययन कर रहे है, मुझे हैवलॉक एलिस की पुस्तक के वे भाग दिये जिनमे खास तौर पर इसी विषय की चर्चा है, और एक मित्र ने मासिक 'प्रेक्टिश्नर' का सन्तति-निग्रह सबधी एक विशेषाक मेरे पास भेजा जिसमें प्रख्यात डाक्टरो ने इस विषय पर डाक्टरी दृष्टि से अपनी सम्मतियां प्रकट की है।

इस विषय का साहित्य इकट्ठा करने में मेरा केवल यही प्रयोजन था कि जहांतक मेरे-जैसे डाक्टरी-ज्ञान से रहित व्यक्ति की शक्ति मे है, ब्यूरो के सिद्धान्तो की मै जाँच करलूं। अक्सर देखा जाता है कि किसी खास विषय के दो आचार्य ही किसी प्रश्न पर क्यों न विचार कर रहे हो, किन्तु सभी प्रश्नो के दो पहलू होते ही है और दोनो पर बहुत-कुछ कहा जा सकता है। इसीलिए मै पाठको के सम्मुख ब्यूरो की यह पुस्तक रखने से पहले कृत्रिम उपायो के पक्षपातियो की सारी युक्तियाँ जान लेना चाहता

---

१ Towards Moral Bankruptcy। प्रकाशक Constable and Company। इसकी भूमिका डॉ० मरी स्कारली, C B E, M D., M S (Lond) ने लिखी है। पृष्ठ-सख्या ५३८ और कुल अध्याय १५ है।

था। सब कुछ पढ लेने के बाद, वहुत सोच-विचारकर, मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि कम-से-कम भारतवर्ष के लिए तो संतति-निग्रह के कृत्रिम उपायो की कोई जरूरत नही है। जो लोग भारतवर्ष में इन उपायो का प्रचार करना चाहते है, उन्हे या तो इस देश की यथार्थ दशा का ज्ञान नही है, या वे जान-बूझकर उसकी उपेक्षा करते है। फिर यदि यह सिद्ध कर दिया जाये कि ये उपाय पाश्चात्य देशो के लिए भी हानिकारक है, तब तो भारतवर्ष की विशेष परिस्थिति पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

आइए, देखें, व्यूरो क्या कहते है। उन्होने केवल फ्रान्स की दशा पर विचार किया है। परन्तु यह भी हमारे मतलव के लिए वहुत काफी है। क्योंकि फ्रान्स ससार के सबसे प्रगतिशील देशो में गिना जाता है, और जब ये उपाय वही सफल न हुए, तो और कहाँ होगे ?

असफलता क्या है ? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न रायें हो सकती है। इसलिए अच्छा है कि 'असफल' शब्द से मेरा जो अभिप्राय है उसकी मैं व्याख्या करदूं। यदि यह वात सिद्ध कर दी जाये कि इन उपायों के कारण लोग नैतिक दृष्टि से आचार-भ्रष्ट होगये, उनमें व्यभिचार वढ गया और कृत्रिम गर्भ-निरोध केवल अपनी स्वास्थ्य-रक्षा अथवा गृहस्थियो की आर्थिक दशा को ठीक रखने की गरज से नहीं वल्कि खास तौर पर अपनी विषय-वासना की पूर्ति के लिए ही किया गया, तो यह मानना होगा कि ये उपाय असफल रहे। यह तो हुई मध्यस्थ पक्ष की वात। पर सबसे ऊँचे सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाये तो कृत्रिम गर्भ-निरोध को कही स्थान ही नही है। उसके अनुसार तो जैसे भोजन केवल शरीर-रक्षा के लिए ही करना चाहिए वैसे ही विषय-भोग केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही करना चाहिए। एक तीसरा पक्ष भी है। इसमें ऐसे लोग है जो

यह मानते है कि 'नैतिक आचार-विचार सब फिजूल है और यदि नैतिक आचार कोई वस्तु है भी तो उसका अर्थ विषय-भोग का सयम नही बल्कि उसकी तृप्ति ही है। खूब विषय-भोग करो, विषय-भोग ही जीवन का उद्देश्य है। बस, इतना ध्यान रहे कि विषय-भोग से शारीरिक स्वास्थ्य इतना न बिगड जाये, जिससे कि उसके उद्देश्य अर्थात् विषय-भोग की पूर्ति मे अडचन पडे।' ऐसे लोगो के लिए, मै समझता हूँ, ब्यूरो ने यह पुस्तक नही लिखी है। क्योकि अपनी पुस्तक के अन्त में उन्होने टॉम मैन के ये शब्द दिये है—"केवल सच्चरित्र जातियो का ही भविष्य उज्ज्वल है।"

२

अविवाहितों में भ्रष्टाचार

ब्यूरो ने अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय मे कुछ ऐसी हकीकते हमारे सामने रक्खी है जिन्हे पढकर हमारा हृदय कॉप उठता है। उनपर से ऐसा मालूम पडता है कि फ्रास मे ऐसी बडी-बडी सस्थाएँ पैदा हो गयी है, जिनका एकमात्र काम लोगो की हीन-से-हीन वृत्तियो को तृप्त करना ही है। सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपायो के हिमायतियो का एक दावा यह है कि इससे लुक-छिपकर गर्भपात का होना रुक जायेगा और भ्रूणहत्या बच जायेगी। लेकिन उनका यह दावा भी गलत साबित होता है। ब्यूरो लिखते है कि फ्रास में यद्यपि पिछले २५ वर्षो से गर्भस्थिति न होने के उपाय लगातार किये जाते रहे, परन्तु फिर भी गर्भपातो की सख्या कम न हुई, उल्टे और अधिक होने लगे। उनका अनुमान है कि प्रतिवर्ष करीब २,७५००० से ३,२५,००० तक गर्भपात होते है। यही नही बल्कि लोगो को अब ऐसी बातें सुनकर वैसा आघात भी नही लगता, जैसा पहले लगा करता था।

व्यूरो कहते है कि गर्भपात के कारण बाल-हत्या, कुटुम्ब के अन्दर ही व्यभिचार और अप्राकृतिक पाप बढ गये है । यद्यपि माताओ के गर्भ-पात रोकने और गर्भ गिराने के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ हो गयी है, मगर उनसे भ्रूणहत्याएँ घटी नहीं बल्कि बहुत बढ गयी है । यहाँतक कि अब ऐसी बाते सुनकर सभ्य कहलानेवाले लोगो को जरा भी नफरत नही होती, और अदालतो से धडाधड 'बेकसूर' के फैसले हो जाते है ।

अश्लील साहित्य कितना बढ गया है, यह बताने के लिए व्यूरो ने खास तौर पर एक अध्याय लिखा है । अश्लील साहित्य क्या है ? इसकी व्याख्या उन्होने इस प्रकार की है—'साहित्य, नाटक और चित्र इत्यादि जो मनुष्य के मन को आनन्द और आराम देने के लिए है, उनका विषय-वासना को उत्तेजन देने के या अश्लील रूप में दुरुपयोग ।' और, उनका कहना है, हर जगह ऐसा साहित्य बिक रहा है । कोने-कोने मे उसीकी चर्चा हो रही है । बडे-बडे बुद्धिमान मनुष्य ऐसे साहित्य की ही तिजा-रत करते है और करोडो रुपये इस व्यापार में लगे हुए है । मनुष्यो के ऊपर इसका इतना जबरदस्त और अपूर्व असर पडा है कि उनका मन पूरी तरह विकृत होगया है और उन्होने विषय-भोग के ऐसे जीवन की सृष्टि करली है जो अपने पूरे रूप में सिर्फ कल्पना में ही मिल सकता है ।

इसके बाद व्यूरो मोशिये रुइमेन का यह दर्दनाक उद्धरण देते है—"इस अश्लील साहित्य से असख्य लोगो को बेहिसाब हानि पहुँच रही है । इसकी बिक्री से पता चलता है कि लाखो-करोडो मनुष्य इसका अध्ययन करते है और पागलखानो के बाहर रहकर भी करोडों पागल बने हुए है । क्योकि जिस प्रकार पागल अपनी एक निराली दुनिया में रहता है, उसी प्रकार अखबारो और किताबो के दुरुपयोग के इस जमाने में, उन्हें पढते समय, मनुष्य भी एक नयी दुनिया में रहता है और इस

ससार की सारी जिम्मेदारियो को भूल जाता है। अश्लील साहित्य पढनेवाले अपने विचारो की अश्लील दुनिया मे भटकते फिरते है।"

इन सब दुष्परिणामो का कारण क्या है ? इन सबकी जड में लोगो की एक ही भूल है। वह यह कि विषय-भोग के लिए ही विषय किये बिना मनुष्य का काम नही चल सकता, बल्कि बिना इसके पुरुष या स्त्री का विकास भी नही हो सकता। ऐसा विचार हृदय में आते ही मनुष्य की दुनिया पलट जाती है—जिसको वह बुराई समझता था उसे भलाई समझने लग जाता है, और अपनी विषय-वासना को उत्तेजित करने एव उसकी तृप्ति के लिए नयी-नयी तरकीबे ढूँढने लगता है।

आगे उद्धरण देकर ब्यूरो ने यह बताया है कि आजकल के अखबार, किताबे, उपन्यास और चित्र व नाटक-सिनेमा आदि दिन-ब-दिन लोगो की इस हीन वृत्ति को ही उत्तेजन दे रहे है।

३

विवाहितों में भ्रष्टाचार

अभीतक तो केवल अविवाहित स्त्री-पुरुषो के ही भ्रष्टाचार की बात हुई। अब विवाहित लोगो के भ्रष्टाचार का हाल सुनिए। ब्यूरो कहते है कि अमीरो, किसानो और औसत दर्जे के लोगो मे विवाह अधिकतर या तो झूठी प्रतिष्ठा या धन के लालच से होते है। कोई अच्छी-सी नौकरी या सम्पत्ति पाने, पुराने व्यभिचार को नीति के आवरण से ढकने, विवाह से पहले उत्पन्न सन्तति को कानूनन वारिस बनाने, बुढापे तथा बीमारी के समय कोई सेवा करनेवाली जुटाने इत्यादि भिन्न-भिन्न उद्देश्यो से विवाह किये जाते है। कभी-कभी व्यभिचार से थककर भी मनुष्य, थोडे सयत रूप में विषय-भोग की ही जिन्दगी बिताने के लिए, विवाह कर लेते है।

लेकिन व्यूरो उदाहरण देकर सिद्ध करते है कि ऐसे विवाहो से व्यभिचार कम होने के वदले उल्टा और बढता है। इस पतन मे वे कृत्रिम उपाय और सावन और भी सहायता करते है, जो व्यभिचार रोकते तो नही परन्तु उसके परिणाम को रोक लेते है। मै उस दु खद भाग को छोड देता हूँ, जिसमे वतलाया गया है कि गत २० वर्षों के अन्दर परस्त्री-गमन की कितनी वृद्धि हुई और अदालतो द्वारा दिये गये तलाको की सख्या दुगुनी हो गयी है। 'मनुष्य के समान ही स्त्रियो के भी अधिकार होने चाहिएँ' इस सिद्धान्त के अनुसार स्त्रियों को विषय-भोग करने की जो स्वतन्त्रता दे दी गयी है उसके सम्बन्ध में भी मै केवल एक-ही दो शब्द कहूँगा। गर्भपात करा देने की क्रियाओ में जो कमाल हासिल कर लिया गया है उससे पुरुष या स्त्री किसीके भी लिए सयम के वन्धन की आवश्यकता ही नहीं रह गयी है। फिर लोग यदि विवाह के नाम पर हँसे तो इसमे अचम्भा ही क्या है ? एक लोक-प्रिय लेखक के ये वाक्य व्यूरो ने उद्धृत किये है—"मेरे विचार से विवाह एक वडी जगली और क्रूर प्रथा है। जव मनुष्य-जाति वुद्धियुक्त जीवन की ओर पदार्पण करेगी तो इस कुप्रथा को ठुकराकर अवश्य चकनाचूर कर देगी, इसमे मुझे कोई सन्देह नहीं है परन्तु पुरुष इतने बुद्धू और स्त्रियाँ इतनी कायर हो गयी है कि वे इस समय जिन क़ानूनो से वँधे हुए है उनसे उन्नत कानून की माँग करने की उन्हे हिम्मत ही नही होती।"

इन दुराचारो के फलो पर और उन सिद्धान्तो पर, जिनसे इन दुराचरणो की पुष्टि की जाती है, सूक्ष्म विचार करके व्यूरो कहते है कि, "यह भ्रष्टाचार हमे एक नयी दिशा मे लिये जा रहा है। वह कौन-सी दिशा है ? वहाँ क्या है ? हमारा भविष्य प्रकाशमय होगा या अन्धकार-मय ? उन्नति होगी या अवनति ? हमारी आत्मा को सौन्दर्य्य के दर्शन

होगे या कुरूपता और पशुता की भयानक मूर्ति दिखाई देगी ? यहाँ जो क्रान्ति फैली हुई है, क्या वह वैसी ही क्रान्ति है, जो समय-समय पर देश और जातियो के उत्थान के पहले हुआ करती है और जिसमें उन्नति का बीज रहता है ? अथवा यह वही क्रान्ति है, जो आदम के हृदय में उठी थी और जो हमें अपने जीवन के बहुमूल्य और आवश्यक सिद्धान्तो को तोडने के लिए उकसाती है ? क्या हम अपनी शान्ति और जीवन को ही इसमे खतरे में नही डाल रहे है ?" फिर जबरदस्त प्रमाण पेश करके बताते है कि इन सब बातो से अबतक समाज की हर तरह बेहिसाब हानि ही हुई है। ये दुराचार तो जिन्दगी की जड को ही काट रहे हैं।

विवाहित स्त्री-पुरुषो का आत्म-सयम द्वारा यथासभव सतति-निग्रह करने की कोशिश करना एक बात है, और विषय-भोग के साथ-साथ उसके परिणाम से बचानेवाले साधनो की सहायता से सतति-निग्रह करना बिल्कुल दूसरी बात है। पहली सूरत में मनुष्यो का केवल लाभ-ही-लाभ है, और दूसरी सूरत मे नुकसान के अलावा और कुछ हो नही सकता। ब्यूरो ने आँकडो और नक्शो की सहायता से यह दिखलाया है कि विषय-भोग की लगाम ढीली करने और फिर उसके स्वाभाविक परिणामों से बचने के उद्देश्य से गर्भ-निरोध के कृत्रिम साधनो के बढते हुए प्रयोग का फल यही हुआ है कि न केवल पेरिस में बल्कि समस्त फ्रास मे मृत्यु-सख्या की अपेक्षा जन्म-सख्या में बहुत कमी हो गयी है। फ्रास के ८७ प्रान्तो में से ६८ में पैदाइश का औसत मौत के औसत से कम है और वहाँ अगर १०० बच्चे जन्म लेते है तो १६२ आदमी मरते है। इसके बाद टानर्न-एट-गारो नामक प्रान्त का नम्बर है, जहाँ प्रत्येक १०० जन्मो के पीछे १५६ मृत्युएँ होती है। सिर्फ १९ प्रात ऐसे है, जिनमे मृत्यु से पैदाइश का औसत ज्यादा है; मगर इनमें भी जन्म-मृत्यु के बीच जो

अन्तर है वह प्राय नगण्य-सा ही है। ऐसे प्रान्त सिर्फ १० ही है, जहाँ जन्म और मरण की सख्या मे कहने लायक फर्क है। सबसे कम मृत्यु मोरबिहान और पासडिकैले मे होती है, जहाँ जन्म-मरण का औसत १०० ७२ है। ब्यूरो यह बतलाते है कि आबादी के कम होते जाने का यह क्रम, जो उनकी समझ मे आत्महत्या कहलायेगा, अभी तक रोका नही जा सका है।

तदुपरान्त ब्यूरो फ्रास के प्रान्तो की दशा का, प्रत्येक अग लेकर, निरीक्षण करते है और सन् १९१४ ई० मे लिखे गये एक ग्रथ मे नॉरमैंडी के बारे मे निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करते है—"नॉरमैंडी की आबादी गत ५० वर्षो मे ३ लाख कम हो गयी है। इसका अर्थ यह है कि वहाँकी उतनी आबादी कम हो गयी, जितनी कि समस्त ओर्न विभाग मे है। अब तो प्रत्येक बीस वर्ष में फ्रास की जन-सख्या एक विभाग की जन-सख्या के बराबर घट जाती है, और चूँकि उसमे केवल पाँच ही विभाग है, इसलिए सौ वर्षो मे तो उसके हरे-भरे खेत फ्रास-निवासियो से खाली ही हो जायेगे। 'फ्रास-निवासी' शब्द का यहाँ मैं जान-बूझकर प्रयोग कर रहा हूँ, क्योकि दूसरे लोग अवश्य ही उसमें आकर बस जायेंगें—और, यदि ऐसा हुआ तो, वह स्थिति शोचनीय होगी। जर्मन लोग केन के आसपासवाली लोहे की खाने चला रहे है और हमारे देखते-ही-देखते चीनी मज़दूर (यह उनका पहला ही अवसर है) भी उस जगह आ पहुँचे है, जहाँसे कि विजेता विलियम इग्लैण्ड जीतने को रवाना हुआ था।" ब्यूरो ने इस वाक्य की आलोचना करते हुए लिखा है कि दूसरे कई प्रान्तो की भी इससे कुछ अच्छी दशा नहीं है।

आगे चलकर उन्होने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि आबादी की इस कमी का यह असर पडा है कि राष्ट्र की सैनिक शक्ति भी घट

गयी है। तदुपरान्त वह फ्रांस के जातीय विकास, उसकी भाषा और सभ्यता के अवसान का भी यही कारण बतलाते हैं। फिर पूछते हैं कि क्या विषय-भोग से—संयम के त्याग से—फ्रांसीसी लोग सांसारिक सुख, आर्थिक उत्कर्ष, शारीरिक स्वास्थ्य तथा बौद्धिक सभ्यता में पहले से कुछ बढ़ गये हैं? इसके उत्तर में उनका कहना है, कि स्वास्थ्य की वृद्धि के विषय में दो चार शब्द ही पर्याप्त होंगे। सभी दलीलों का क्रमबद्ध रूप से उत्तर देने की हमारी इच्छा चाहे जितनी प्रबल क्यों न हो, फिर भी इस बात को तो हम जवाब देने के लायक भी नहीं समझते कि निरंकुश विषय भोग से कभी शारीरिक स्वास्थ्य का सुधरना संभव है। क्या नव-युवक और क्या प्रौढ़, चारों ओर से सभी की निर्बलता की चर्चा सुनाई पड़ती है। लड़ाई के पहले सैनिक विभाग के अधिकारियों को बार-बार रँगरूटों के लिए शारीरिक योग्यता की शर्त ढीली करनी पड़ी थी, और सारे देशभर में लोगों की सहन-शक्ति में बहुत कमी हो गयी है। यह कहना निस्संदेह अन्याय होगा कि असंयम ने ही यह बुरी अवस्था उत्पन्न की है, परन्तु हाँ, वह भी इसका एक बड़ा कारण जरूर है। साथ ही मद्यपान, रहन-सहन की गन्दगी इत्यादि का भी स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। किन्तु यदि हम ध्यान-पूर्वक सोचेंगे तो यह बात हमारी समझ में आसानी से आजायेगी कि इस भ्रष्टाचार और इसकी पोषक घृणित भावनाओं का इन बलाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जननेंद्रिय-संबंधी रोगों के भयंकर विस्तार ने सर्व-साधारण के स्वास्थ्य को बड़ी भारी क्षति पहुँचायी है। कुछ लोगों का खयाल है (जैसे कि माल्थस का) कि जिस समाज में जन्म-मर्यादा का खयाल रक्खा जाता है, उसमें देश की सम्पत्ति उसी हिसाब से बढ़ती जाती है, जिस हिसाब से वहाँ जन्म-वृद्धि पर अंकुश रक्खा जाता है। लेकिन ब्यूरो इस विचार का समर्थन नहीं

करते । इसके विरुद्ध वह अपने विचार का समर्थन जर्मनी और फ्रास की हालतो को लेकर इस प्रकार करते है कि जर्मनी में, जहाँ औसतन जन्म से मृत्युएँ कम होती है, राष्ट्र की सम्पत्ति बढती जाती है और फ्रास में, जहाँ जन्म की तादाद मौतो की बनिस्बत कम है, धन का ही अभाव बढता जा रहा है। उनका कहना है कि जर्मनी के व्यापार के आश्चर्य-जनक फैलाव का कारण अन्य देशवालो की अपेक्षा जर्मन मजदूरो का कोई अधिक बलिदान नही है । वह रोसीनोल का यह वाक्य उद्धृत करते है—'जर्मनी की आबादी जिस समय केवल ४,१०,००,००० थी, लोग भूखो मर गये। मगर जबसे उसकी आबादी ६,८०,००,००० हुई है, तबसे वह दिन-पर-दिन धनवान होता जा रहा है।" उनका यह भी कथन है कि जर्मन लोग, जो किसी प्रकार के वैरागी नही है, सेविंग बैंको मे प्रतिवर्ष रुपया जमा करने में समर्थ हुए है। सन् १९११ ई० में उनके बाईस अरब फ्रैंक (फ्रास का सिक्का) बैंको में जमा थे, जबकि १८९५ ई० में केवल ८ अरब थे—यानी हर साल उनके हिसाब में साढे आठ करोड और जमा होते गये ।

ब्यूरो ने इस बात को जरूर कबूल किया है कि जर्मनी की यह सब आश्चर्यजनक उन्नति केवल इसी कारण नही हुई है कि वहाँ जन्म सख्या मृत्यु-सख्या से अधिक है। उनका कहना है—और वह ठीक है—कि अन्य प्रकार की सुविधाओ के होते हुए यह तो बिल्कुल स्वाभाविक ही है कि जन्म-सख्या के बढने के फलस्वरूप राष्ट्रीय उन्नति भी हो। वास्तव मे वह जो बात सिद्ध करना चाहते है, वह यह है कि जन्म-सख्या के बढते जाने मे आर्थिक तथा नैतिक उन्नति का रुकना कुछ लाजिमी नही है। जहाँतक पैदाइश मे सम्बन्ध है, हम हिन्दुस्तानी लोग फ्रास की स्थिति में हरगिज नही है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि जर्मनी की तरह

हिन्दुस्तान मे भी जन्म-सख्या का बढते जाना राष्ट्रीय जीवन के लिए सहायक न होगा। परन्तु ब्यूरो के अको, उनके सतर्क विचारो तथा निष्कर्षा को मद्देनजर रखते हुए हिन्दुस्तान की परिस्थिति पर तो अलग विचार करना होगा।

जर्मन परिस्थितियो पर, जहाँ मृत्यु से जन्म का औसत ज्यादा है, विचार करने के अनन्तर ब्यूरो कहते है—"क्या हमे यह नही मालूम है कि यूरोप में फ्रास का स्थान चौथा है, मगर राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिहाज से तृतीय स्थानवाले देश से वह बहुत नीचे है? फ्रास राष्ट्र की सालाना आमदनी ढाई हजार करोड फ्रैंक है और जर्मन लोगो की पाँच हजार करोड फ्रैंक। हमारे राष्ट्र ने तीस वर्षो मे—यानी १८७९ से १९१४ तक—४० अरब फ्रैंक की घटी सही है। देश के समस्त विभागो में खेतो मे काम करनेवाले आदमियो की कमी है, और किन्ही-किन्ही ज़िलो मे पुराने आदमियो को छोडकर कोई भी नये आदमी दिखाई नही देते।" आगे चलकर वह लिखते है कि भ्रष्टाचार और कृत्रिम वन्ध्यत्व के अर्थ ये है कि समाज की स्वाभाविक शक्तियाँ क्षीण हो जाये और सामाजिक जीवन मे वृद्ध पुरुषो का नि शक प्राधान्य रहे। फ्रास के हर १००० आदमियो में बच्चे और युवक मिलाकर सिर्फ १७० है, जबकि जर्मनी में २२० और इग्लैण्ड में २१० है। इस प्रकार युवको की अपेक्षा बूढो का अनुपात जितना होना चाहिए उससे कही ज्यादा बढा हुआ है और दूसरे लोगो में भी, जिन्होने अपने भ्रष्टाचार से जवानी मे ही बुढापा बुला लिया है, नैतिक रूप से हत-तेज जाति की सभी प्रकार की कापुरुषता विद्यमान है।

ब्यूरो का कहना है कि, हमे मालूम है, फ्रासीसी लोगो मे अधिकाश शासकवर्ग इस शिथिल नीति के प्रति उदासीन है, क्योकि उनकी समझ

में यह जानने की कोई ज़रूरत नही कि किसकी खानगी ज़िन्दगी कैसी है। लियोपोल्ड मोनोड का निम्नलिखित कथन वह वडे खेद के साथ उद्धृत करते हैं —

"अत्याचारियो पर गन्दी गालियो की बौछार करने तथा अत्याचार से पीडित लोगो के वन्धन काटने के लिए युद्ध करना सराहनीय अवश्य है, लेकिन उन लोगो के वारे में क्या किया जाये, जो या तो भय के कारण या लालच मे अपनी आत्मा की रक्षा नही कर सके है, या उनके वारे में, जिनका साहस पीठ ठोंके जाने या त्योरी वदलनें से घट-वढ सकता है, अथवा उन आदमियो के विषय में जो शर्म-लिहाज़ को वालाए-ताक रखकर अपनी उस शपथ को तोडते है जो उन्होंने अपनी यौवनावस्था में खुशी और सजीदगी के साथ अपनी पत्नी के साथ की थी और उल्टे अपनें कृत्यो पर प्रसन्न होते है, तथा उन आदमियो के वारे में, जो अपने निज के निरकुश स्वार्थ के शिकार वनकर अपनी गृहस्थी को दु खमयी वनाते हैं ? ऐसे मनुष्य भला हमारे मुक्तिदाता क्योकर वन सकते है ?"

अन्त में वह कहते है—"इस प्रकार से, चाहे जिवर दृष्टि डालकर देखें, हमको एक तो यह मालूम होगा कि हमारे नैतिक असयम के कारण व्यक्ति, गृह तथा समाज को भारी चोट पहुँची है, और दूसरे यह कि हमने अपने सिर वडी भारी आफत मोल ले रक्खी है। हमारे युवकों के व्यभिचार ने, गन्दी पुस्तको तथा तसवीरो ने, धन के उद्देश्य से विवाह करने के रिवाज ने, मिथ्याभिमान, विलासिता तथा तलाक ने, वन्ध्यत्व और गर्भपात ने, राष्ट्र को अपग कर दिया है तथा उसकी वढती को मार दिया है। व्यक्ति अपनी शक्ति को सचित नही रख सका है और वच्चो की जन्म-सख्या की कमी के साथ-साथ क्षीण और दुर्वल सन्तति

उत्पन्न होने लगी है। 'यदि पैदाइशे कम हों तो बच्चे अच्छे होगे' यह उक्ति उन लोगो को प्रिय लगा करती थी, जिन्होने कि अपनेको वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के स्थूल भाव मे परिमित मानकर यह समझ रक्खा था कि मनुष्यो की उत्पत्ति भी भेड-बकरी के उत्पादन की भाँति मानी जा सकती है। ऐसे ही लोगो पर ऑगस्ट कोम्टे ने तीव्र व्यग से कहा था कि सामाजिक दोषो के ये नकली चिकित्सक व्यक्तियो तथा समाज के मानस की गूढ जटिलता को तो समझने मे सर्वथा असमर्थ है, ये तो अगर पशु-वैद्य होते तो ठीक था।

"सच तो यह है कि उन तमाम मनोवृत्तियो में जिन्हे आदमी ग्रहण करता है, उन सब निर्णयो मे जिनपर वह पहुँचता है, उन सब आदतो मे जिन्हे वह डालता है, कोई ऐसी बात नही है जो मनुष्य की वैयक्तिक और सामाजिक ज़िन्दगी पर उतना असर डालती हो जितना कि विषय-भोग के साथ सम्बन्ध रखनेवाली वृत्ति और उसके निर्णय इत्यादि डालते है। मनुष्य उनकी रोक-थाम करे या स्वय उनके प्रवाह मे बहने लग जाये, उसके कृत्यो की प्रतिध्वनि सामाजिक जीवन के कोने-कोने में सुनाई पडेगी, क्योकि यह प्राकृतिक नियम है कि गुप्त-से-गुप्त कार्य भी अपना असर डाले बिना नही रह सकता। लेकिन इसी रहस्य की बदौलत हम अपने को किसी भी प्रकार की अनीति करते समय इस भुलावे मे डाल लेते है कि हमारे कुकृत्य का कोई दुष्परिणाम न होगा।

"अब रही अपने सम्बन्ध की बात। सो अपने विषय मे पहले तो हम निर्द्वन्द्व हो बैठते है (क्योकि हमारे कृत्यो का हेतु हमारी ही इच्छा रही है), परन्तु जब हम समाज के विषय मे खयाल दौडाते है, तब उसे अपने से इतने ऊँचे पर समझते है कि वह हमारे कुकृत्यो की ओर देखेगा भी नही, और फिर साथ ही हम गुप्त रीति से इस बात की भी आशा रखते है

कि दूसरो में पवित्रता और सदाचार के भाव बने ही रहेगे। सबसे भद्दी बात तो यह है कि इस प्रकार का पोच विचार कभी-कभी केवल असाधारण और अपवाद-स्वरूप अवसरों पर प्राय सच निकल जाता है, और फिर सफलता के मद में भूलकर हम अपना व्यवहार वैसा ही कायम रखते हैं और, जब कभी मौका मिलता है, उसे न्यायसगत ही ठहराते है। परन्तु ध्यान रहे कि यही हमारे लिए सबसे बडी सजा है।

"लेकिन कोई दिन ऐसा भी आता है जबकि हमारे इस व्यवहार से मिलनेवाला उदाहरण अन्य प्रकार से हमको धर्मच्युत करने का कारण बनता है—हमारे प्रत्येक कुकृत्य का यह परिणाम होता है कि सदाचार से वह प्रेम करना, जिसे हम 'दूसरों' में विद्यमान समझते आये है, हमारे लिए अधिक कठिन और साहसयुक्त बन जाता है। फल यह होता है कि हमारा पडोसी धोखा खाते-खाते ऊबकर हमारी नकल करने के लिए उतावला हो उठता है। बस, उसी दिन से अध पतन प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य तुरन्त अपने कृत्यो के परिणामो का अनुमान कर पाता है, और वह यह भी जान सकता है कि उसका उत्तरदायित्व कहाँतक है।

"जिस गुप्त कार्य को हम एक कन्दरा में बन्द समझते थे, उसमें से वह निकल पडा है। उसमें एक प्रकार की निराली स्फूर्त्ति के आ जाने से वह समस्त खण्डो में फैल चुका है। सबको हरेक की भूल के कारण कष्ट सहन करना पडता है, और 'एक मछली सब जल गन्दा कर देती है', यह कहावत चरितार्थ होती है। जैसे किसी जलाशय में पत्थर फेकने से सारा जलाशय क्षुब्ध हो उठता है उसी प्रकार हमारे प्रत्येक कृत्य का सामाजिक जीवन के सुदूर कोनो पर भी असर पडता है।

"अनीति जाति के रस स्रोतों को तुरन्त ही सुखा देती है। वह पुरुष

को शीघ्र ही क्षीण कर डालती और उसका नैतिक तथा शारीरिक सत्व चूस लेती है।"

४
संयम और ब्रह्मचर्य

इतना लिख चुकने पर कि विविध प्रकार के भ्रष्टाचार से व्यक्ति, कुटुम्व और समाज की भयकर हानि होती है, व्यूरो कहते है—मनुष्य भूल से मान बैठता है कि मेरा अमुक काम स्वतन्त्र है, इससे समाज को कोई हानि नही। प्रकृति का नियम ऐसा है कि गुप्त-से-गुप्त और व्यक्ति-गत रूप से किये गये काम का भी असर दूर-से-दूर तक पडता है। अपने काम को पाप माननेवाले भी यह आग्रह करके कि उनके उस काम का समाज से सम्वन्ध नही है, अक्सर पाप मे इतने फँस जाते है कि अपने पाप को पाप मानने मे भी उन्हे सन्देह होने लगता है और उसी पाप का वे प्रचार करने लगते है। फिर उस पाप का ज़हर सारे समाज मे फैलता है। इसका अर्थ यह होता है कि गुप्त पाप से भी समाज को वडी हानि पहुँचती है।

इसका क्या उपाय है ? व्यूरो साफ-साफ वतलाते है कि कायदे-कानून वनाकर इसे नही रोका जा सकता। केवल आत्म-सयम ही एक उपाय है। इसलिए इस पक्ष मे लोकमत तैयार करना परमावश्यक है कि अविवाहित स्त्री-पुरुप सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ रहे। जो लोग अपनी विपयेच्छा पर इतना कावू नहीं रख सकते, उनके लिए विवाह करना आवश्यक है, और जो विवाह कर चुके, उन्हे एक-दूसरे के साथ वफादार रहकर अतिशय सयम के साथ अपना जीवन विताना चाहिए।

परन्तु कई लोग कहते है "ब्रह्मचर्य से स्त्री-पुरुष के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, और यह कहना कि ब्रह्मचर्य का पालन करो उनकी

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर और इस हक पर, कि वे अपनी इच्छानुसार सुख से जीवन बितायें, असह्य आक्रमण करना है।" इस दलील का ब्यूरो ने मुंहतोड़ जवाब दिया है। उनका कहना है कि विषयेच्छा नींद और भूख जैसी कोई वस्तु नहीं है, कि जिसके बिना आदमी जी ही न सके। अगर हम नहीं खायें तो कमजोर हो जायेंगे, अगर नींद न ले तो बीमार पड़ेंगे, और अगर शौच को रोकें तो कई बीमारियां होंगी, किन्तु विषयेच्छा को तो हम खुशी से रोक सकते है, और इस इच्छा को रोकने की ताकत भी भगवान ने ही हमें दी है। आजकल विषयेच्छा स्वाभाविक इच्छा कही जाती है। इसका कारण यह है कि आजकल की हमारी सभ्यता में कितनी ही ऐसी उत्तेजक बातें भरी पड़ी है, जिनसे हमारे युवक-युवतियों में यह इच्छा समय से पहले ही जागृत हो जाती है। कई बड़े बड़े डाक्टरों के मत उद्धृत करके उन्होंने बताया है कि ब्रह्मचर्य से तन्दुरुस्ती को कोई नुकसान नहीं होता, बल्कि बेहद लाभ पहुँचता है।

टूबिनगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अस्टर्लेन का कथन है कि "कामवासना इतनी प्रबल नहीं होती कि जिसका विवेक या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके। युवतियों की ही तरह युवकों को भी उचित अवस्था पाने के पूर्व तक संयम से रहना सीखना चाहिए। उन्हें जान लेना चाहिए कि उनके आत्मसंयम का पुरस्कार उन्हें हृष्ट-पुष्ट शरीर तथा दिन-पर दिन बढ़ते हुए उत्साह और बल के रूप में मिलेगा।

"यह बात जितनी बार कही जाये थोड़ी ही है, कि नैतिक तथा शरीर-सम्बन्धी संयम और पूर्ण ब्रह्मचर्य का एक साथ रहना भलीभांति सम्भव है और विषय-भोग का समर्थन न तो उपर्युक्त किसी पहलू से किया जा सकता है और न धर्म की ही दृष्टि से।"

लन्दन के रायल कॉलेज के प्रोफेसर सर लायोनल वील कहते है कि "श्रेष्ठ पुरुषो के उदाहरणो से सिद्ध है कि वडे-से-वडे विकार भी दृढ और गम्भीर सकल्प-वल तथा रहन-सहन के वारे मे उचित सावधानी रखने से रोके जा सकते है। जब कभी सयम का पालन कृत्रिम साधनो से नही वल्कि उसे स्वेच्छा से आदत मे दाखिल करके किया गया है, तव उससे कभी नुकसान नही पहुँचा। लेकिन यह सयम खाली शरीर का न हो, वल्कि विचारो में भी पवित्रता रहनी चाहिए।"

स्वीज़रलैण्ड का मनोवैज्ञानिक फोरल, जिसने इस विषय का खूब अध्ययन किया है और जो उसी अधिकारयुक्त वाणी मे इसकी चर्चा करता है, कहता है कि "व्यायाम से प्रत्येक प्रकार का शारीरिक वल वढता और मजवूत होता है—इसके विपरीत, किसी भी प्रकार की अकर्मण्यता उसके उत्तेजित करनेवाले कारणो के प्रभाव को दवा देती है। विषय-सम्वन्धी सभी उत्तेजक वाते विषय-वासना को अधिक प्रवल कर देती है। उन वातो से वचने से उनका प्रभाव मन्द हो जाता है और विषय-वासना धीरे-धीरे कम हो जाती है। प्रायः युवक यह समझते है कि विषय-निग्रह करना एक असाधारण एव असम्भव काम है। किन्तु वे लोग, जो स्वय सयम से रहते है, सिद्ध करते है कि विना तनदुरुस्ती विगाडे भी पवित्र जीवन विताया जा सकता है।"

एक दूसरा विद्वान् रिविग कहता है "मै २५ या ३० वर्ष की अवस्थावाले तथा उससे भी अधिक आयु के ऐसे लोगो को जानता हूँ, जिन्होने पूर्ण सयम रक्खा है। ऐसे लोगो को भी मै जानता हूँ कि जिन्होने अपने विवाह के पूर्व भी सयम कायम रक्खा है। ऐसे पुरुषो की कमी नही है, हाँ यह जरूर है कि वे अपना ढिढोरा नही पीटते।"

डा० एक्टन का कथन है "विवाह से पूर्व युवको को पूर्ण सयम से

रहना चाहिए, और यह सम्भव भी है।"

सर जेम्स पैगट की धारणा है कि "जिस प्रकार पवित्रता से आत्मा को क्षति नहीं पहुँचती उसी प्रकार शरीर को भी कोई हानि नहीं पहुँचती। इंद्रिय-संयम सबसे उत्तम आचरण है।"

डॉ० पेरियर कहते हैं 'पूर्ण संयम के बारे में यह कल्पना करना कि वह खतरनाक है, बिल्कुल ग़लत खयाल है और उसे दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि यह युवक-युवतियों के ही नहीं, बल्कि उनके माता-पिताओं के भी मन को गन्दा कर देता है। नवयुवकों के लिए ब्रह्मचर्य शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक तीनों दृष्टियों से उनकी रक्षा करनेवाली चीज़ है।"

सर एंड्रू क्लार्क कहते हैं "संयम कोई नुकसान नहीं पहुँचाता, और न वह मनुष्य के स्वाभाविक विकास को ही रोकता है; उलटे वह तो बल बढाता है और बुद्धि को तीव्र करता है। असंयम से आत्म-नियंत्रण जाता रहता है, आलस्य बढता है, और शरीर ऐसे रोगों का शिकार बन जाता है जो पुश्त-दर-पुश्त असर करते चले जाते हैं। यह कहना कि विषय-भोग नवयुवकों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है—केवल भूल ही नहीं है, बल्कि उनके प्रति निर्दयता भी है। यह कथन झूठ और हानिकारक है।"

डा० सर्बेन्ड ने लिखा है "असंयम के दुष्परिणाम तो निर्विवाद और सर्वविदित हैं, परन्तु संयम के दुष्परिणाम केवल कपोल-कल्पित हैं। इन दो बातों में पहली बात का अनुमोदन तो बडे-से-बडे विद्वान् करते हैं, लेकिन दूसरी बात को सिद्ध करनेवाला अभीतक कोई नहीं मिला।"

डाक्टर मोण्टेगज्जा लिखते हैं "ब्रह्मचर्य से होनेवाले रोग मैंने नहीं देखे। आमतौर पर सभी कोई और विशेषरूप से नवयुवक ब्रह्मचर्य से

होनेवाले लाभों का तुरन्त ही अनुभव कर सकते है।"

डाक्टर ड्यूबाय इस बात का समर्थन करते हुए कहते है कि "उन आदमियो की बनिस्बत, जो कि पशु-वृत्ति के चगुल मे बचना जानते है, वे लोग नामर्दी के अधिक शिकार होते है, जो विषय-भोग के लिए अपनी इद्रियो की लगाम बिल्कुल ढीली किये रहते है।" डाक्टर फीरी उनके इस वाक्य का पूरे तौर पर समर्थन करते हुए कहते है कि "जो लोग मानसिक सयम कर सके वे ब्रह्मचर्य पालन करे और इसके कारण अपने स्वास्थ्य के बारे मे किसी प्रकार का भय न रक्खें। विषयेच्छा की पूर्ति पर ही स्वास्थ्य निर्भर नही रहता।"

प्रोफेसर एल्फ्रेड फोर्नियर लिखते है कि "कुछ लोगो ने युवकों के आत्म-सयम के खतरो के बारे मे अनुचित और निराधार बाते कही है। परन्तु मै विश्वास दिलाता हूँ कि यदि सचमुच आत्म-सयम में कोई खतरे है, तो मै उनसे बिल्कुल अनजान हूँ। और यद्यपि अपने पेशे में उनके बारे मे जानकारी पैदा करने का मुझे मौका था, तो भी एक चिकित्सक की हैसियत से उनके अस्तित्व का मेरे पास प्रमाण नही है। इसके अतिरिक्त, शरीर-शास्त्र के एक ज्ञाता की हैसियत से, मै तो यही कहूँगा कि लगभग २१ वर्ष की उम्र के पहले वीर्य पूरी तरह पुष्ट नही होता और न विषय-भोग की आवश्यकता ही उसके पहले प्रतीत होती है। विषयेच्छा प्राय बुरे तौर पर किये गये लालन-पालन का फल है, बुरा लालन-पालन बालक-बालिकाओ मे समय से पहले ही कुवासना को उत्तेजित कर देता है।

"खैर, कुछ भी हो, यह बात तो निश्चित ही है कि विषय-वासना के सयम से किसी खतरे की सम्भावना नही है। खतरा तो अपरिपक्व अवस्था में विषय-वासना जागृत करने और उसकी तृप्ति करने में है।"

इतना विश्वस्त प्रमाण देने के बाद, ब्यूरो ने १९०२ ई० मे ब्रुसेल्स नगर मे हुई ससारभर के बडे-बडे डाक्टरो की सभा मे स्वीकृत यह प्रस्ताव उद्धृत किया है—"नवयुवको को सिखाना चाहिए कि ब्रह्मचर्य के पालन से उनके स्वास्थ्य को कभी हानि नही पहुँच सकती, बल्कि वैद्यक और शरीर-शास्त्र की दृष्टि से तो ब्रह्मचर्य ऐसी वस्तु है जिसकी बडी जोरो से सिफारिश की जानी चाहिए।"

आगे वह लिखते है कि—"कुछ साल पहले एक ईसाई विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग के सभी अध्यापको ने सर्व-सम्मति मे घोषित किया था कि यह कहना बिल्कुल निराधार है कि ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य के लिए कभी हानिकारक हो सकता है। यह बात हम अपने अनुभव और ज्ञान के बल पर कहते है। हमारी जानकारी मे इस प्रकार के जीवन से कभी कोई हानि होती नही पायी गयी।"

"इसपर से", सारे विषय के उपसहार-रूप मे ब्यूरो लिखते है, "आप यह भलीभाति समझ चुके होगे कि समाजशास्त्री और नीतिशास्त्री पुकार-पुकारकर कहते है कि विषयेच्छा भी नीद और भूख के समान कोई ऐसी वस्तु नही है, जिसकी तृप्ति अनिवार्य हो। यह दूसरी बात है कि कुछ साधारण अपवाद देने पडे, किन्तु स्त्री-पुरुषो के लिए, बिना किसी बडी कठिनाई या दु ख के, ब्रह्मचर्य-पालन सहज है। सामान्यत ब्रह्मचर्य से तो कभी कोई रोग नही होता, इसके विपरीत बहुत भयकर रोगो की उत्पत्ति असयम से होती है। पर यदि क्षणभर के लिए यह भी मानले कि वीर्य-रक्षा से रोग होता हो, तो भी प्रकृति ने ही मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, जरूरत से अधिक शक्ति के लिए, स्वाभाविक स्खलन या मासिकधर्म द्वारा रज-वीर्य के निकलजाने का मार्ग तैयार कर दिया है।" इसलिए डा० बीरी का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि "यह सवाल

वास्तविक आवश्यकता या प्रकृति का नहीं है। यह बात सभी कोई जानते हैं कि अगर भूख की तृप्ति न हो या श्वास बन्द हो जाये तो कौन-कौनसे दुष्परिणाम हो सकते हैं। लेकिन कोई लेखक यह नहीं लिखता है कि अस्थायी, या स्थायी किसी भी प्रकार के, संयम के फलस्वरूप फलां छोटा बडा किसी भी तरह का रोग हो सकता है। अगर संसार में हम ब्रह्मचारियो की ओर देखे, तो वे किसीसे न तो चरित्रबल में कम है और न संकल्पबल में—शरीरबल में तो जरा भी कम नही है। वे यदि विवाह करले, तो गृहस्थ-धर्म के पालन की योग्यता में भी दूसरो से कुछ कम नही पाये जायेंगे। जो वृत्ति इस प्रकार सहज में ही रोकी जा सकती है, वह न तो आवश्यक है और न स्वाभाविक ही। विषय-तृप्ति कोई ऐसी वस्तु नही जो मनुष्य के शारीरिक विकास के लिए आवश्यक हो। बल्कि बात तो ठीक उससे उल्टी है। शरीर के साधारण विकास के लिए पूर्ण संयम का पालन परमावश्यक है। इसलिए वय प्राप्त युवक अपने बल का जितना अधिक संग्रह कर सके उतना ही अच्छा है। क्योंकि उस उम्र में, बचपन की बनिस्बत, रोग को रोकने की शक्ति कम होती है। इस विकास-काल में, जबकि देह और मन पूर्णता की ओर बढते है, प्रकृति को बहुत मेहनत करनी पडती है। इस समय में किसी भी बात की ज्यादती बुरी है, किन्तु विषयेच्छा की उत्तेजना तो खासतौर पर खतरनाक है।"

५

व्यक्ति स्वातन्त्र्य की दलील

ब्रह्मचर्य से होनेवाले शारीरिक लाभो का विचार हो चुका। अब लेखक इसके नैतिक और मानसिक लाभो पर प्रकाश डालते हैं। प्रो० मोण्टेगज्जा के शब्दो में वह कहते हैं—"ब्रह्मचर्य से कई लाभ तत्काल

होते है । इनका अनुभव सभी कर सकते है—और नवयुवक तो विशेष करके । ब्रह्मचर्य से तुरत ही स्मरण-शक्ति स्थिर और सग्राहक, बुद्धि उर्वरा और इच्छा-शक्ति बलवान हो जाती है । मनुष्य के सारे जीवन मे वह रूपान्तर हो जाता है जिसकी कल्पना भी स्वेच्छाचारियो को कभी नही हो सकती । ब्रह्मचर्य जीवन में ऐसा विलक्षण सौन्दर्य और सौरभ भर देता है कि सारा विश्व नये और अद्‌भुत रग में रँगा हुआ-सा जान पडता है, और वह आनन्द नित्य नवीन मालूम होता है । इधर ब्रह्मचारी नवयुवको की प्रफुल्लता, चित्त की शान्ति और चमक और उधर इन्द्रियो के दासो की अशान्ति, बेचैनी और घबराहट में कितना आकाश-पाताल का अन्तर होता है ? भला इद्रिय-सयम से भी कोई रोग होता हुआ कभी सुना गया है ? परन्तु इन्द्रियो के असयम से होनेवाले रोगो को कौन नही जानता ? शरीर तो सड ही जाता है । पर हमें यह न भूलना चाहिए कि उससे भी बुरा परिणाम मनुष्य के मन, मस्तिष्क, हृदय और सज्ञाशक्ति पर होता है । स्वार्थ का प्रचार, इन्द्रियो की उद्दाम प्रवृत्ति, चारित्र्य की अवनति ही तो सर्वत्र सुनने मे आती है ।"

इतना होने पर भी जो लोग वीर्य-नाश को आवश्यक मानते है और कहते है कि 'हमे शरीर का मनमाना उपयोग करने का पूरा हक है, सयम की कैद लगाकर आप हमारे स्वातत्र्य पर आक्रमण करते है', उन्हे उत्तर देते हुए लेखक ने कहा है कि समाज की उन्नति के लिए यह रोक आवश्यक है । उनका कहना है—"समाजशास्त्री के सामने कर्मों के परस्पर आघात-प्रतिघात का ही नाम जीवन है । इन कर्मों का परस्पर कुछ ऐसा अनिश्चित और अज्ञात सम्बन्ध है कि कोई एक भी ऐसा कर्म नही हो सकता, जिसको हम अकेला कह सकें । उसका प्रभाव सर्वत्र पडेगा ही । हमारे छिपे-से-छिपे कर्मो का, विचारो का और मनोभावो का

ऐसा गहरा और दूरतक प्रभाव पड सकता है कि हमारे लिए उसका अन्दाज़ लगाना भी असम्भव है। यह कोई हमारा अपना बनाया हुआ नियम नही है। यह तो मनुष्य का स्वभाव है--प्रकृति है। मनुष्य के सभी कामो के इस अखण्ड सम्बन्ध का विचार न करके कभी-कभी कोई समाज कुछ विषयो मे व्यक्ति को स्वाधीन बना देना चाहता है। पर उस स्वाधीनता को स्वीकार करने से ही व्यक्ति अपने को छोटा बना लेता है—अपना महत्त्व खो देता है।"

इसके बाद लेखक ने यह दिखलाया है कि जब हमे सब जगह सडक पर थूकने तक का अधिकार नही है, तो भला वीर्यरूपी इस महाशक्ति का मनमाना खर्च करने का अधिकार हमे कहाँसे मिल सकता है ? क्या यह काम ऐसा है, जो ऊपर के बतलाये हुए समस्त कामो के पारस्परिक अखण्ड सम्बन्ध से अलग है ? सच पूछो तो, इसकी गुरुता के कारण इसका प्रभाव तो और भी गहरा हो जाता है। इन नवयुवक और नवयुवती को देखो, जिन्होने अभी इस तरह का सम्बन्ध स्थापित किया है। ये समझते है कि इसमे वे स्वतन्त्र है—इस काम से और किसीको मतलब नही—यह केवल उन दोनो का ही है। वे अपनी स्वतन्त्रता के भुलावे मे पडकर यह समझते है कि इस काम से समाज का न तो कोई सम्बन्ध है और न समाज का उसपर कुछ नियन्त्रण ही हो सकता है। पर यह उनका लडकपन है। वे नही जानते कि हमारे गुह्य और व्यक्तिगत कर्मो का अत्यन्त दूर के कामो पर भी भयानक असर पडता है। इस प्रकार समाज को तुम नष्ट करना चाहते हो। तुम चाहो या न चाहो, परन्तु जब तुम केवल आनन्द के लिए, अल्पस्थायी व अनुत्पादक ही सही, परन्तु यौनसम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दिखलाते हो, तो तुम समाज के भीतर भेद और भिन्नता के बीज डालते हो, हमारे स्वार्थ वा स्वच्छन्दता

से हमारी सामाजिक स्थिति बिगड़ी हुई तो है ही, परन्तु अभी सब समाजों में ऐसा ही समझा जाता है कि प्रजोत्पादक शक्ति के व्यवहार-सुख में जो जिम्मेदारी आ पड़ती है उसे सब कोई खुशी-खुशी उठायेंगे। इस जिम्मेदारी को भूल जाने से ही आज पूंजी और श्रम, मजदूरी और विरासत, कर और सैनिक-सेवा, प्रतिनिधित्व के अधिकार इत्यादि पेचीदा सवालों का जन्म हुआ है। इस भार को अस्वीकार करने से एक बारगी ही वह व्यक्ति समाज के सारे संगठन को हिला देता है, और इस प्रकार दूसरे का बोझा भारी कर आप हल्का होना चाहता है। इसलिए वह किसी चोर, डाकू या लुटेरे से कम नहीं कहा जा सकता। अपनी इस शारीरिक शक्ति के सुव्यवहार के लिए भी समाज के सामने हम वैसे ही जिम्मेदार हैं, जैसे अपनी और शक्तियों के लिए। हमारा समाज इस विषय में निरस्त्र है, उसे हमारी अपनी समझदारी पर ही उसके उचित उपयोग का भार रखना पड़ा है; इस कारण इसकी जिम्मेदारी तो और भी कुछ बड़ी ही होनी चाहिए।"

मनोवैज्ञानिक आधार पर भी वह उतना ही जोर देते हैं, जबकि कहते हैं—"स्वाधीनता बाहर से तो सुख-सी मालूम होती है, परंतु वास्तव में वह एक भार-सी है। इसका अनुभव तुम्हें पहली बार में ही हो जाता है। तुम समझते हो कि मन और विवेक दोनों एक हैं, पर ऐसी बात नहीं है। दोनों में है तो तुम्हारी शक्ति, परन्तु कई बार दोनों में बहुत भेद देखा जाता है। उस समय तुम किसकी आज्ञा मानोगे? अपनी विवेक-बुद्धि की, या अपनी नीच-से-नीच इन्द्रिय-लालसा की? यदि इन्द्रिय-लालसा पर विवेक की विजय होने में ही समाज की उन्नति है, तब तो तुम्हें इन दोनों में से एक बात को चुन लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु तुम यह भी कह सकते हो, कि मैं शरीर और

आत्मा दोनो का साथ-साथ पारस्परिक विकास चाहता हूँ। ठीक। परतु यह भी याद रक्खो कि आत्मा के थोडे से विकास के लिए भी कुछ-न-कुछ सयम तो तुम्हे करना ही होगा। पहले इन विलास के भावो को नष्ट करदो तो पीछे तुम जो चाहोगे वह हो सकेगा।"

महाशय गैब्रील सीलेस भी कहते है कि हम अक्सर कहते फिरते है कि हमे स्वतन्त्रता चाहिए—हम स्वतन्त्र होगे। परन्तु हम नही जानते कि यह स्वतन्त्रता कर्त्तव्य की कैसी कठोर बेडी बन जाती है। हमे यह नही मालूम कि हमारी इस नकली स्वतन्त्रता का अर्थ है इन्द्रियो की गुलामी, जिससे हमे न तो कभी कष्ट का अनुभव होता है और न हम कभी इसलिए उसका विरोध ही करते है।

सयम मे शाति है और असयम तो अशान्ति-रूप महाशत्रु का घर है। कामेच्छाएँ तो सभी समय मे कष्टदायी हो सकती है, परन्तु युवावस्था मे तो यह महाव्याधि हमारी बुद्धि को बिल्कुल ही बिगाड दे सकती है। जिस नवयुवक का किसी स्त्री से पहले-पहल सम्बन्ध होता है, वह नही जानता कि वह अपने नैतिक, मानसिक और शारीरिक जीवन के अस्तित्व के साथ खेल कर रहा है। उसे यह भी नही मालूम कि उसके इस काम की याद उसे बार-बार आकर सतायेगी और उसे अपनी इन्द्रियो की बडी बुरी गुलामी करनी पडेगी। कौन नही जानता कि एक-से-एक अच्छे लडके, जिनसे आगे बहुत कुछ आशा की जा सकती थी, चौपट हो गये और उनके पतन का आरभ उनके पहली बार के नैतिक पतन से ही हुआ था ?

मनुष्य का जीवन तो एक बरतन के समान है, जिसमे पहली बूँद मे ही मैला छोड दो तो फिर लाख पानी डालते रहने पर भी सभी गन्दा होता जायेगा।

इग्लैण्ड के प्रसिद्ध शरीर-शास्त्री महाशय केन्ड्रिक ने भी तो कहा है कि "कामेच्छा की सतुष्टि केवल नैतिक दोष भर ही नही है। उससे शरीर को भी हानि पहुँचती है। यदि इस इच्छा के सम्मुख तुम झुकने लगो, तो यह प्रबल होगी और तुम्हारे ऊपर और अत्याचार करने लग जायेगी। यदि तुम्हारा मन सदोष है, तो तुम उसकी बाते सुनोगे और उसका बल बढाते जाओगे। ध्यान रक्खो कि प्रत्येक काम-पूर्ति तुम्हारी गुलामी की जजीर की एक नयी कडी बन जायेगी। फिर तो इसे तोडने की तुम्हे शक्ति ही न रहेगी, और इस प्रकार तुम्हारा जीवन एक अज्ञान-जनित अभ्यास के कारण नष्ट हो जायेगा। सबसे अच्छा उपाय तो ऊँचे विचारो को पैदा करना और सभी बातो मे सयम से काम लेना ही है।"

अन्त मे ब्यूरो ने इसके बाद डाक्टर एस्केण्डे का मत देकर बताया है कि "कामेच्छा के ऊपर मन और इच्छा का पूरा अधिकार है, क्योकि यह कोई अनिवार्य शारीरिक आवश्यकता या हाजत नही है। यह तो केवल एक इच्छा-भर है, जिसका पालन हम जानबूझकर अपनी राजी से ही करते है, न कि स्वभाव के वश होकर।"

६
आजीवन ब्रह्मचर्य

विवाह के पहले और बाद भी ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होते है, यह बताकर ब्यूरो ने इस विषय पर प्रकाश डाला है कि आजीवन ब्रह्मचर्य कहाँतक सभव है और उसका क्या महत्त्व है ? वह लिखते है —

"काम-वासना की गुलामी से मुक्ति पानेवाले वीरो मे सबसे पहले उन युवक-युवतियो का नाम लिया जायेगा, जिन्होने किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य-पालन का निश्चय

कर लिया है। उनके इस दृढ-निश्चय के अलग-अलग कारण होते हैं। कोई अपने मातृ-पितृहीन छोटे भाई-वहनो के लिए स्वय माता-पिता का स्थान ग्रहण करता है, कोई ज्ञानार्जन में ही जीवन विताना चाहता है, तो कोई रोगियो या गरीवो की सेवा मे और कोई धर्म या जाति अथवा शिक्षा के लिए ही जीवन अर्पण कर देना चाहता है। इस निश्चय के पालन में किसीको तो अपने मनोविकारो से भयकर युद्ध करना पडता है, और किसीके लिए कभी-कभी भाग्यवशात् पहले से ही रास्ता साफ और तैयार रहता है। वे अपने मन में अपने या परमात्मा के सम्मुख प्रतिज्ञा कर लेते है कि जो ध्येय उन्होने चुन लिया वह चुन लिया, अव विवाह की वात करना व्यभिचार होगा। प्रसिद्ध चित्रकार माईकेल एन्जेलो से जव किसीने कहा कि तुम विवाह कर लो, तो उसने जवाव दिया, कि "चित्रकारी मेरी ऐसी पत्नी है, जो सौत का रहना वरदाश्त नहीं करेगी।"

अपने यूरोपीय मित्रो के अनुभव से मैं व्यूरो के वतलाये हुए प्राय सभी प्रकार के मनुष्यो का उदाहरण देकर उनकी इस वात का समर्थन कर सकता हू कि वहुत से मित्रो ने आजीवन-ब्रह्मचर्य का पालन किया है। हिन्दुस्तान को छोडकर और किसी भी देश में वालको को वचपन से ही विवाह की वाते नही सुनायी जाती। यहाँ तो माता-पिता की अभिलाषा रहती है—लडके का विवाह कर देना और उसकी गुजर का उचित प्रवन्ध कर देना। पहली वात से तो असमय मे ही वुद्धि और शरीर का ह्रास होता है और दूसरी से आलस्य आ घेरता है और कभी-कभी दूसरे का कमाई पर जीने की लत पड जाती है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छा से लिये हुए दारिद्रय के व्रत की कठिनाइयो का खूब वढा-चढाकर वखान करते है और उसे असाधारण वताकर कहते है, 'यह तो केवल योगियो

और महात्माओं के ही लिए सम्भव है और वे विरले ही कोई होते हैं।' पर हम यह भुला देते हैं कि जिस समाज की ऐसी गिरी हालत हो, उसमें सच्चे योगी और महात्मा का होना ही असम्भव है। सदाचार की चाल यदि कछुए की चाल के समान धीमी और अबाध है, तो दुराचार खरहे की तरह दौड़ता है। हमारे पास पश्चिम के देशों से व्यभिचार का सौदा बिजली की चाल से दौड़ा आता है और अपनी मनोमोहिनी चमक-दमक से हमारी आँखों को चौंधिया देता है और हम सत्य को भूल जाते हैं। क्षण-क्षण में पश्चिम से तार के द्वारा जो वस्तु पहुँचती है और प्रतिदिन परदेशी माल से लदे हुए जो जहाज उतरते हैं, उनमें होकर जो जगमगाहट आती है उसे देखकर ब्रह्मचर्य व्रत लेने में हमें शर्म तक आने लगती है और निर्धनता के व्रत को हम पाप कहने के लिए तैयार हो जाते हैं। परन्तु आज हिन्दुस्तान में हमें पश्चिम का जो दर्शन हो रहा है, पश्चिम हूबहू वैसा नहीं है। जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका के गोरे वहाँ के रहनेवाले थोड़े से हिन्दुस्तानियों को देखकर ही सभी हिन्दुस्तानियों के चरित्र का अनुमान करने में भूल करते हैं, उसी प्रकार हम भी इन थोड़ेसे नमूने पर सारे पश्चिम का अन्दाजा लगाने में अन्याय करते हैं। जो इस भ्रम का पर्दा हटाकर भीतर देख सकते हैं वे देखेंगे कि पश्चिम में भी वीर्य और पवित्रता का एक छोटा-सा परन्तु अटूट झरना मौजूद है। यूरोप की इस महामरुभूमि में भी ऐसे झरने हैं, जहाँ जो कोई चाहे जीवन का पवित्र-से-पवित्र जल पीकर सन्तुष्ट हो सकता है। वहाँ के कई लोग ब्रह्मचर्य और स्वेच्छापूर्वक निर्धनता के व्रत लेते हैं, और न तो उसपर गर्व करते हैं, न कुछ शोर ही मचाते हैं। यह सब नम्रता के साथ किसी स्वजन की अथवा स्वदेश की सेवा के लिए करते हैं। हम लोग धर्म की बातें इस प्रकार करते हैं मानो धर्म में और व्यवहार में कोई सम्पर्क ही

न हो और धर्म केवल हिमालय के एकान्तवासी योगियो के लिए ही हो। लेकिन जिस धर्म का हमारे दैनिक आचार-व्यवहार पर कुछ असर न पडे, वह धर्म एक हवाई खयाल के सिवा और कुछ नही है। सभी नौजवान पुरुष और स्त्रियां समझ ले कि अपने आसपास के वातावरण को शुद्ध बनाना और अपनी कमज़ोरी को दूर करना तथा ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना उनका कर्त्तव्य है। वे यह भी जान ले कि यह काम उतना कठिन नही है, जितना कि वे सुनते आये है।

ब्यूरो आगे लिखते है—"यदि हम यह मान भी ले कि विवाह करना आवश्यक ही है, तो भी न तो सब कोई विवाह कर ही सकते है और न सबके लिए इसे आवश्यक और उचित ही कहा जायेगा। इसके अलावा कुछ लोग ऐसे भी तो होते है जिन्हे ब्रह्मचर्य से रहने के सिवा दूसरा रास्ता ही नही रह जाता—(१) कुछ लोग ऐसे है जिन्हे अपने रोज़गार या गरीबी के कारण मजबूरन् विवाह करने से रुकना पडता है, (२) कितनो को अपने योग्य वर या कन्या नही मिलती, (३) बहुत-से ऐसे है, जिन्हे कोई ऐसा रोग होता है कि जिसके सन्तान मे भी आ जाने का भय होता है। और भी कई कारणो से कुछ लोगो को विवाह का बिल्कुल विचार ही छोड देना पडता है। किसी उत्तम कार्य या उद्देश्य के लिए, सशक्त और सम्पन्न स्त्री-पुरुषो के ब्रह्मचर्य-व्रत से उन लोगो को भी अपने व्रत के पालन में सहारा मिलता है, जो लाचार ब्रह्मचारी बने रहते है। स्वेच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत को जिसने धारण किया है, उसे तो अपना ब्रह्मचारी जीवन अपूर्ण नही मालूम होता। इसके विपरीत वह तो ऐसे ही जीवन को ऊंचा और परमानन्द से भरा हुआ जीवन मानता है। विवाहित और अविवाहित दोनो प्रकार के ब्रह्मचारी को उनके व्रत-पालन से उत्साह मिलता है। वह उनका पथ-प्रदर्शक बनता है।

फोर्स्टर का मत है कि "ब्रह्मचर्य-व्रत विवाह-संस्था का बड़ा भारी सहायक है। क्योंकि यह तो विषयेच्छा और विकारो से मनुष्य की मुक्ति का चिह्न-स्वरूप है। विवाहित स्त्री-पुरुष इसे देखकर यह समझते है कि वे परस्पर एक-दूसरे की केवल विषयेच्छा की ही पूर्ति के साधन नहीं है, बल्कि विषय-वासना के रहते हुए भी वे स्वतन्त्र और मुक्त आत्मा है। ब्रह्मचर्य का मजाक उडानेवाले लोग यह नही जानते कि उसका मजाक उडाकर वे व्यभिचार और बहु-विवाह का समर्थन कर रहे है। यदि यह मान लिया जाये कि विषयेच्छा की तृप्ति करना परमावश्यक है, तो फिर विवाहित स्त्री-पुरुषों से किस प्रकार पवित्र जीवन की आशा रक्खी जा सकती है? वे यह भूल जाते है कि रोगवश या किसी और कारण से कभी-कभी दम्पती में से एक की अशक्ति के कारण दूसरे के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य हो जाता है। अगर और कुछ नही तो केवल एक इसी कारण से ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा हम स्वीकार करते है उतने ही ऊँचे पर हम एकपत्नी-व्रत के आदर्श को चढाते है।"

७

विवाह का पवित्र संस्कार

आजीवन ब्रह्मचर्य के अध्याय के बाद, कई अध्यायो में ब्यूरो ने विवाहित जीवन के कर्त्तव्य और विवाह की अखण्डता पर विचार किया है। यद्यपि वह अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते है, तथापि चूंकि जन-साधारण के लिए वह शक्य नही है, इसलिए वैसे लोगो के लिए विवाह-बन्धन केवल आवश्यक ही नही वरन् कर्त्तव्य-रूप है। उन्होने दिखलाया है कि विवाह के कर्त्तव्यो और उद्देश्यो को ठीक-ठीक समझ

लेने पर सन्तति-निग्रह के समर्थन की जरूरत नही पड़ेगी। इस नैतिक असयम का कारण हमारी विपरीत शिक्षा है। विवाह का मजाक उडाने-वाले लेखको के तर्कों का जवाब देकर वह कहते है —

"पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम विवाह है। विवाह केवल आपस का ठेका भर ही नही है, वरिक वह एक धार्मिक सस्कार है—धर्म-सबध है। यह कहना भूल है कि विवाह के नाम पर किये जाने वाले सभी प्रकार के विषय-विलासमय असयम क्षम्य है। असयम से विवाह के असली उद्देश्य को धक्का पहुँचता है। सन्तानोत्पत्ति के सिवाय और सभी प्रकार की काम-वासना की तृप्ति सच्चे प्रेम के लिए वाधक और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है। सन्त फासिस का कहना था कि कडी दवाएँ खाना हमेशा खतरनाक ही होता है। काम-वासना की दवा के रूप मे विवाह वडी अच्छी वस्तु है, परन्तु वह कडी है और इसलिए वहुत सम्हालकर यदि उसका व्यवहार न किया जाये तो खतर-नाक भी है।"

इसके बाद विवाह-सबध स्थापित करने या तोडने में अथवा सीधे-सीधे विवाह से प्राप्त होनेवाले कर्त्तव्यो की पर्वा न करके असयत जीवन विताने मे व्यक्तिगत स्वाधीनता का विरोध करके उन्होने एक-पत्नीव्रत पर ही जोर दिया है। उनका कहना है —

"यह बात गलत है कि विवाह करने या स्वार्थमय ब्रह्मचर्य का जीवन विताने का हमे पूरा अधिकार है। विवाहित स्त्री-पुरुष को परस्पर के राजीनामे से विवाह-सयोग तोडने का अधिकार तो और भी कम है। उनकी स्वतत्रता एक-दूसरे को चुन लेने-भर मे ही होती है। और वे चुनते है यह ठीक-ठीक समझकर कि एक-दूसरे के साथ विवाह के कर्त्तव्यो का वे ठीक-ठीक पालन कर सकेगे। फिर एकवार जब यह सस्कार हो

गया, तब उसका प्रभाव इन दो मनुष्यो के बाहर समाज पर बहुत दूर तक पडने लगता है। भले ही आज उसे हम न समझ सके, परन्तु जो समझते है वे हमारे आज के सामाजिक दु खो की जड को पहचानते है। उन्हे इससे सतोप होगा कि जब सभी सस्थाओ का विकास होता है, तो इस विवाह-सस्था का भी विकास और परिवर्तन होना आवश्यक है। वे तो देखते है कि आज जब परस्पर केवल राजीनामे से ही तलाक देने के अधिकार मांगे जाते है, तो समय पाकर होनेवाले कष्टो से ही पातिव्रत एव एकपत्नीव्रत की महिमा का हमे ज्ञान होगा।

"विवाह की अखण्डता का नियम अकारण शोभा के लिए ही नही है। व्यष्टि और समष्टि के सामाजिक जीवन की बडी नाजुक बातो से इसका सम्बन्ध है। जो लोग विकासवादी है, उन्हे सोचना चाहिए कि जाति की यह अनिश्चित उन्नति आखिर किस रास्ते होगी ? उत्तरदायित्व के भाव की वृद्धि, व्यक्ति का स्वेच्छा से धारण किया हुआ सयम, सतोष और उदारता की वृद्धि, स्वार्थ का नियमन, क्षणिक क्षोभो के विरुद्ध भावुकता का जीवन—मनुष्य के आन्तरिक जीवन की इन बातो को हम भूल नही सकते। सभी प्रकार की आर्थिक वा सामाजिक उन्नति मे इनका खयाल रखना ही होगा, नही तो उन उन्नतियो का कोई मूल्य नही गिना जा सकता। इसलिए सामाजिक और नैतिक दोनो दृष्टियो से यदि हम भिन्न-भिन्न प्रकार के काम-सबध पर दृष्टि डालते है, तो हमे इस बात का विचार करना ही पडेगा कि हमारे सारे सामाजिक जीवन की शक्ति को बढाने के लिए कौनसी सस्था सबसे अच्छी है ? दूसरे शब्दो में, मनुष्य की आन्तरिक जीवन-शुद्धि, स्वार्थ-त्याग और बलिदान की वृद्धि तथा चचलता इत्यादि के नाश के लिए कौन-सा जीवन सबसे अच्छा होगा ? इन प्रश्नो पर विचार करने पर कहना ही पडेगा कि

एकपत्नीव्रत के सामाजिक और शिक्षा-सबधी महत्त्व के कारण उससे अच्छा जीवन दूसरा नही है। पारिवारिक जीवन मे ही इन सब मनुष्योचित गुणो का विकास होता है और अपनी अखण्डता के कारण दिन-पर-दिन इस सबध की गम्भीरता भी बढती ही जाती है। यो भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एकपत्नीव्रत ही है।"

ऑगस्ट कॉम्टे के अनुसार, "हमारे ऊपर समाज का नियत्रण परमावश्यक है, नही तो धीरे-धीरे हमारा जीवन किसी काम का न रह जायेगा। काम-वासना की तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य नही है।"

डाक्टर टूलो लिखते है कि "विवाहित जीवन के सुखो मे इस भूल से बहुत बाधा पडती है कि काम-प्रवृत्ति की पूर्ति परमावश्यक है। ठीक इससे विपरीत मनुष्य की प्रकृति है, इन प्रवृत्तियो का दमन करना। छोटा बच्चा अपनी शारीरिक प्रवृत्तियो का दमन करना सीखता है, तो बडे लोगो को मन की प्रवृत्तियो के दमन का अभ्यास करना पडता है। हम लोग जिसे प्राय स्वभाव या प्रवृत्ति के नाम से पुकारते है, वह हमारी कमजोरी है। जिसमे वह शक्ति है, वह पुरुष उचित अवसर पर उस शक्ति का प्रयोग भी कर सकता है।"

८

उपसहार

अच्छा, अब इस लेख-माला को समाप्त करना चाहिए। ब्यूरो ने माल्यस के सिद्धान्तो की जिस प्रकार समीक्षा की है, उसे जानना हमारे लिए खास आवश्यक नही है।

"चूंकि इस समय मनुष्यो की सख्या बहुत बढ रही है, इसलिए यदि यह अभीष्ट हो कि समस्त मनुष्य-जाति समूल नष्ट न हो जाये तो सन्तति

निग्रह को आवश्यक मानना ही पडेगा"—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करके माल्थस ने अपने जमाने के लोगो को चकित कर दिया था। मगर माल्थस ने तो इद्रिय-सयम का ही प्रतिपालन किया था, किन्तु आजकल का एक नया माल्थसी सिद्धान्त निकला है, जो सयम की शिक्षा न देकर पशुवृत्ति की तृप्ति के दुष्परिणामो से बचने के लिए यत्रो और ओषधियो का व्यवहार सिखलाता है। नैतिक रीति से अर्थात् इन्द्रिय सयम के द्वारा सन्तति-निग्रह का समर्थन तो ब्यूरो बहुत खुशी से करते है, परन्तु जैसा कि हम देख चुके है, वह दवाओ या यन्त्रो की सहायता से सन्तति-निग्रह का निषेध एव घोर विरोध करते है। उन्होने श्रमजीवियो की दशा तथा उनकी जन्म सख्या की जाँच की है और अन्त मे व्यक्तिगत स्वाधीनता तथा मनुष्यता के नाम पर फैली हुई अनीतियो को रोकने के उपायो पर विचार करते हुए पुस्तक समाप्त की है। लोकमत का नेतृत्व और नियमन करने के लिए वह सगठित रूप से काम करने की सलाह देते है, और इस विषय मे कानून की सहायता का भी समर्थन करते है। परन्तु उनका अन्तिम विश्वास तो धार्मिक वृत्ति की जागृति पर ही है। अनीति को एक तो यो ही मामूली उपायो से नही रोका जा सकता, फिर तब तो बिल्कुल ही न रोका जा सकेगा, जबकि अनीति को ही धर्मनीति का पद दिया जाने लगेगा और नीति को दुर्बलता, अन्ध-विश्वास या अनीति कहा जावेगा—जैसे सन्तति-निग्रह के बहुत-से समर्थक ब्रह्मचर्य को अनावश्यक ही नही बल्कि हानिकारक भी बतलाते है। ऐसी दशा में निरकुश पापाचार को रोकने में केवल एक धर्म की ही सहायता कारगर होगी। यहाँ धर्म का सकीर्ण अर्थ न लेना चाहिए। व्यक्ति हो या समाज, उस पर सच्चे धर्म का जितना गहरा प्रभाव पडता है उतना किसी दूसरी वस्तु का नही। धार्मिक जागृति का अर्थ क्रान्ति, परिवर्तन अथवा पुन-

जन्म है। ब्यूरो की सम्मति में फ्रांस जिस विनाश के पथ पर चला जा रहा है, उससे उसे कोई धार्मिक क्रान्ति के समान महाशक्ति ही बचा सकती है—कोई दूसरी चीज नहीं।

अच्छा, अब हम ब्यूरो तथा उनकी पुस्तक को यहीं छोड़ दें। फ्रांस और हिन्दुस्तान की हालत एक-सी नहीं है। हमारी समस्या कुछ और ही है। गर्भ-निरोधक साधनों का यहाँ घर-घर प्रचार नहीं है। शिक्षित लोगों में भी इन वस्तुओं का व्यवहार शायद ही होता हो। मेरी समझ से हिन्दुस्तान में उनके प्रचार के लिए कोई उपयुक्त कारण भी नहीं है। मध्यम श्रेणीवालों में जन्म-संख्या अधिक है। जहाँतक मैंने देखा है, विधवाओं और बाल-पत्नियों के लिए ही यहाँ इन वस्तुओं के उपयोग का समर्थन किया जाता है। इसलिए एक ओर तो हम नाजायज औलाद की पैदाइश से बचना चाहते हैं परन्तु गुप्त व्यभिचार से नहीं, और दूसरी ओर हमें नाजुक बालिका के साथ बलात्कार किये जाने का दुःख नहीं किन्तु उसके गर्भवती हो जाने का डर है।

अब रहे वे रोगी, निर्बल और निर्वीर्य नवयुवक जो अपनी या परायी स्त्री के प्रति कामासक्त रहते हैं और इसे पाप मानते हुए भी इसके परिणामों से दूर भागना चाहते हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि असंख्य भारतीयों के इस महासागर में ऐसे विरले ही हृष्ट-पुष्ट और वीर्यवान् स्त्री-पुरुष मिलेंगे, जो विषय-तृप्ति भी चाहें और बच्चों का बोझ उठाने से घबराएँ भी। इनके उदाहरण पेश करके कोई इन घृणित प्रवृत्तियों का प्रचार न करे, क्योंकि यदि इनका सर्व-साधारण में प्रचार हो जायेगा तो इस देश के युवकों का सर्वनाश निश्चित है। अत्यन्त कृत्रिम शिक्षा-पद्धति ने जाति के युवकों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अपहरण कर लिया है। हम लोगों का जन्म प्रायः बचपन के ब्याहे माता-पिता से

ही हुआ है। स्वास्थ्य और सफाई के नियमो की उपेक्षा करने से हमारा शरीर घुन गया है। उत्तेजक मसालोवाले एव गलत और अपर्याप्त भोजन ने हमारी पाचनशक्ति को नष्ट कर डाला है। हमे जरूरत इस बात की नही है कि गर्भ-निरोधक साधनो की शिक्षा दी जाये और यह बताया जाये कि पाशविक प्रवृत्ति की तृप्ति के निमित्त क्या-क्या करे। हमे तो सबसे ज्यादा जरूरत इस शिक्षा की है कि काम-वासना पर हम कैसे अधिकार करे, और किस तरह आजीवन ब्रह्मचर्य से रह सके ? इस बात की शिक्षा हमे उपदेश और उदाहरण दोनो के द्वारा दी जाने की जरूरत है कि यदि हमें शरीर और दिमाग को कमजोर नही रखना हो तो हमारे लिए ब्रह्मचर्य का पालन परमावश्यक है और वह सर्वथा शक्य भी है। हमसे पुकार-पुकारकर यह कहे जाने की जरूरत है कि यदि हमारी जाति बौनो की जाति बनना नही चाहती है तो हमें अपनी शक्ति का सचय करना होगा और अपनी बची-बचाई थोडी-सी शक्ति को बढाना होगा जो पानी मे बही जा रही है। बाल-विधवाओ को यह बतलाना होगा, कि गुप्त-रूप से पाप मत करो, किन्तु साहस करके बाहर आओ और खुलकर अपना वही अधिकार तुम भी माँगो जो नवयुवक विधुरो को पुनर्विवाह के रूप मे प्राप्त है। हमे ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है कि जिसमे बाल-विवाह असम्भव हो जाये। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, शान से शुरू किये गये हमारे कामो का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव इत्यादि इन सबके मूल मे मुख्यत हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है। मुझे उम्मीद है कि नवयुवक इस भ्रम मे न पडेगे कि जबतक वे सन्तानोत्पत्ति से बचे रहे तबतक वे भोग-विलास से उन्हे कोई हानि नही पहुँचती—उससे निर्बलता नही आती। सच पूछो तो प्रजनन को रोकने के लिए कृत्रिम उपायो से युक्त विषय-

भोग, उसकी जिम्मेदारी को समझकर किये हुए सम्भोग की अपेक्षा, कही अधिक शक्ति का नाश कर सकता है। यदि हमारा मन यह मान ले कि विषय-भोग आवश्यक, निर्दोष और पाप रहित है, तो फिर हम उसको निरतर तृप्त करते रहना चाहेंगे और हमारे लिए उसका दमन असम्भव हो जायेगा। किन्तु यदि हम अपने मन को ऐसा समझा सके कि उसमे पडना हानिकारक है, पापमय एव अनावश्यक है, और उसको काबू मे रक्खा जा सकता है, तो हमको मालूम होगा कि आत्म-सयम सर्वथा शक्य है।

नूतन सत्य के और मनुष्यो की स्वाधीनता के बहाने उन्मत्त पश्चिम स्वच्छदता की जो मदिरा यहाँ भेज रहा है, उससे हमे बचना ही होगा, परन्तु इसके विपरीत यदि हम अपने पूर्वजो के ज्ञान को खो बैठे हो, तो हम पश्चिम की उस शान्त और गम्भीर ध्वनि को सुने, जो कभी-कभी वहाँके बुद्धिमान् पुरुषो के गम्भीर अनुभव से हमारे पास छन-छनकर आया करती है।

चार्ली एण्डरूज़ ने मेरे पास जनन और प्रजनन पर मि० विलियम लौफ्ट्स हेयर का एक अच्छा-सा लेख भेजा है, जो मार्च सन् १९२६ के "ओपनकोर्ट" नामक पत्र मे प्रकाशित हुआ था। लेख बडा युक्तियुक्त और वैज्ञानिक है। उसमे उन्होने दिखलाया है कि सभी प्राणियो के शरीर मे दो क्रियाएँ बराबर चालू रहती है—"शरीर को बनाने के लिए आन्तरिक जनन और प्रजा-वृद्धि के लिए बाह्य प्रजनन।" इनका नाम वे क्रमश जनन और प्रजनन रखते है। "जनन (आन्तरिक जनन) व्यक्ति के जीवन का आधार है और इसलिए आवश्यक तथा मुख्य काम है। प्रजनन का काम शरीर-कोशो के आधिक्य से होता है, अतएव वह गौण है। जीवन का यह नियम है कि पहले जनन के लिए शरीर-कोशो

की पूरी भर्ती हो ले, तब प्रजनन हो। यदि शरीर-कोशो की कमी रहे तो पहले जनन का काम होगा, प्रजनन का बन्द रहेगा। इस प्रकार हम प्रजनन की बन्दी की जड का पता पा जाते है तथा ब्रह्मचर्य और तपस्या के मूल तक पहुँच पाते है। आन्तरिक जनन की क्रिया के रुकने का परिणाम मृत्यु ही है, और कुछ नही। इस प्रकार हम मृत्यु का भी कारण जान जाते है।" शरीर के प्रजनन का वर्णन करते हुए वह कहते है—"सभ्य मनुष्यो में प्रजनन की आवश्यकता से कही ज्यादा वीर्य नष्ट किया जाता है और इससे आन्तरिक जनन का काम रुकता है—जिसके फलस्वरूप रोग, मृत्यु और अन्य कई तरह के दुख और क्लेश होते है।"

जिसे हिन्दू दर्शन-शास्त्र का जरा भी ज्ञान होगा उसे मि० हेयर के लेख का निम्नलिखित अवतरण समझने में कुछ भी कठिनाई न होगी—

"प्रजनन की क्रिया कुछ यन्त्र की क्रिया-सी नही है। प्रारम्भिक काल मे कोशो के विभाजन मे प्रजनन का जैसा सजीव काम होता था, वैसा ही सजीव अब भी होता है—अर्थात् वह बुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है। यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम बिल्कुल निर्जीव कल की भाँति होता है। हां, सच यह है कि ये मूलभूत बाते हमारी वर्तमान जागृति से इतनी दूर जा पडी है कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के आधीन नही मालूम होती, परन्तु एक क्षण के बाद ही हमें मालूम पड जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीरवाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओ का नियन्त्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है—और उसका काम ही यही है—उसी प्रकार शरीर के क्रमश होते हुए सगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनोवैज्ञानिको ने उसका नाम अज्ञात शक्ति रक्खा है। यह हमारे नित्य, नैमित्तिक विचारो से दूर होते हुए भी हमारा ही अग-विशेष है। यह अपने

काम में इतनी जागरूक और सावधान रहती है कि हमारा चैतन्य कभी-कभी सुप्तावस्था में पड जाता है,परन्तु यह एक क्षण के लिए भी विश्राम नही लेती।"

शरीर-सुख के लिए किये गये अमर्याद विषय-भोग से हमारी इस अज्ञात क्रिया-शक्ति अर्थात् हमारे अधिक स्थायी अंश की जो अपूर्व हानि होती है, उसका अन्दाजा कौन लगा सकता है ? 'प्रजनन का फल मृत्यु है। विषय-सम्भोग पुरुष के लिए प्राण-घातक है, और प्रसूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही है।' इसलिए लेखक का कथन है कि "बहु-संयमी या सम्पूर्ण ब्रह्मचारी मनुष्य वीर्यवान्, प्राणवान् और निरोग होता है।" और "प्रजनन अथवा साधारण आमोद के लिए ही शरीर-कोशो को जनन-पथ से हटाने से शरीर की कमी पूरी होने में बाधा पहुँचती है और धीरे-धीरे (परन्तु अन्त मे अवश्यमेव) शरीर को हानि पहुँचती है। इन्ही शारीरिक बातो के आधार पर मनुष्य की व्यक्तिगत संभोग-नीति निर्भर है, जिससे हमे यदि उसके दमन की नही तो संयम की शिक्षा तो मिलती ही है—या किसी प्रकार कुछ-न-कुछ समय के मूल कारण का पता तो जरूर ही चलता है।" यह सहज ही समझा जा सकता है कि लेखक दवा या यन्त्रो की सहायता से गर्भ-निरोध करने के विरोधी है। उनका कहना है, "इससे आत्म-संयम का कोई हेतु रह नही जाता, और विवाहित स्त्री पुरुषो के लिए जबतक बुढापे की कम-जोरी या इच्छा की कमी न आ जाये तबतक वीर्य-नाश करते जाना संभव हो जाता है। इसके अतिरिक्त विवाहित जीवन के बाहर भी इसका प्रभाव अवश्य पडता है। इससे उच्छृंखलता और अनुत्पादक व्यभिचार का द्वार खुल जाता है। यह बात आधुनिक समाज-शास्त्र और राजनीति की दृष्टि से खतरे से भरी हुई है। परन्तु यहाँ इनपर

पूरा विचार करने की जरूरत नही है। इतना कहना ही यथेष्ट होगा कि गर्भ-निरोधक साधनो से विवाह-बन्धन के भीतर अथवा उसके बाहर अनुचित एव अत्यधिक सम्भोग के लिए सुविधा हो जाती है, और शरीर-शास्त्र सम्बन्धी मेरी उपर्युक्त दलील यदि ठीक है तो इससे व्यष्टि और समष्टि दोनो की हानि निश्चित है।"

जिस वाक्य से व्यूरो ने अपनी पुस्तक समाप्त की है, वह ऐसा है जिसे प्रत्येक भारतीय युवक को अपने हृदय-पटल पर अकित कर लेना चाहिए—"भविष्य सयमी लोगो के ही हाथ मे है।"

: २ :

एकान्त वार्त्ता

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे प्रश्न पूछनेवालो के इतने पत्र मेरे पास आते है, और इस विषय मे मेरे विचार इतने दृढ है, कि मै खासकर राष्ट्र की इस सबसे नाजुक घडी में अपने विचारो और अनुभवो के फलो को पाठको से छिपा नही सकता।

ब्रह्मचर्य सस्कृत भाषा का शब्द है, जो शास्त्रो मे से हमे मिला है, और आम तौर पर ब्रह्मचर्य का जो अर्थ हम करते है (जिसके लिए कि अग्रेजी मे Celibacy शब्द है) उससे कही ज्यादा उसका महत्त्व है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, सभी इन्द्रियो और विकारो पर सम्पूर्ण अधिकार। ब्रह्मचारी के लिए कुछ भी असम्भव नही है। मगर यह एक आदर्श स्थिति है, जिसे विरले ही पा सकते है। यह करीब-करीब ज्यामिति की आदर्श-रेखा के समान है, जो केवल कल्पना मे ही रहती है, प्रत्यक्ष

खीची नही जा सकती। मगर तो भी ज्यामिति मे यह परिभाषा महत्त्व-पूर्ण है और इससे बडे-कडे परिणाम निकलते है। वैसे ही सम्पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना मे ही रह सकता है। मगर यदि हम उसे दिन-रात अपने मानसिक चक्षुओ के आगे रक्खे न रहे तो हम बेपेंदी के लोटे बने रहेगे। काल्पनिक रेखा के जितने ही नजदीक हम पहुँच सकेगे, उतनी ही सम्पूर्णता भी प्राप्त होगी।

लेकिन फिलहाल तो मै स्त्री-सम्भोग न करने के सकुचित अर्थ मे ही ब्रह्मचर्य को लेता हूँ। मै मानता हूँ कि आत्मिक पूर्णता के लिए विचार, शब्द और कार्य सभी मे सम्पूर्ण आत्म-सयम जरूरी है। जिस राष्ट्र मे ऐसे आदमी नही है वह इस कमी के कारण गरीब गिना जायेगा। मगर यहाँ तो मेरा उद्देश्य यही है कि राष्ट्र की इस समय जो स्थिति है उसमें अस्थायी रूप से ब्रह्मचर्य की अवस्था सिद्ध करूँ।

रोग, अकाल, दरिद्रता और भुखमरी भी हमारे हिस्से मे कुछ अधिक ही पडे है। गुलामी की चक्की मे हम इस सूक्ष्म रीति से पिसे चले जा रहे है कि यद्यपि हमारी इतनी आर्थिक, मानसिक और नैतिक हानि हो रही है, मगर हममे से कितने ही उसे गुलामी मानने को ही तैयार नही और भूल से मानते है कि हम स्वाधीनता-पथ पर आगे बढे जा रहे है। दिन-दूना रात-चौगुना बढनेवाला सैनिक खर्च, लकाशायर के और दूसरे ब्रिटिश हितो के लिए ही जान-बूझकर लाभदायक बनायी गयी हमारी अर्थ-नीति और सरकार के भिन्न-भिन्न विभागो को चलाने की शाही फिजूलखर्ची ने देश के ऊपर वह भार लादा है, जिससे उसकी गरीबी बढी है और रोगो का आक्रमण रोकने की शक्ति घटी है। गोखले के शब्दो मे, इस शासन-नीति ने हमारी बाढ इतनी मार दी है कि हमारे बडे से-बडे लोगो को भी झुकना पडता है। अमृतसर मे हिन्दुस्तान को पेट के बल भी रेगाया गया।

पंजाब का सोच-सोचकर किया गया अपमान और हिन्दुस्तानी मुसलमानो को दिये गये वचन को तोडने के लिए माफी माँगने से गर्वपूर्वक इन्कार करना—ये नैतिक दासता के सबसे ताजे उदाहरण है। इनसे सीधे हमारी आत्मा को ही धक्का पहुँचता है। अगर हम इन दो जुल्मो को सहले तो वह हमारी नपुंसकता की पूर्ति ही कही जायेगी।

हम लोगो के लिए, जो स्थिति को जानते है, ऐसे बुरे वातावरण में बच्चे पैदा करना क्या उचित है? जबतक हमें ऐसा मालूम होता है कि हम बेबस, रोगी और अकाल-पीडित है, तबतक बच्चे पैदा करते जाकर हम निर्बलो और गुलामो की ही सख्या बढाते है। जबतक हिन्दुस्तान स्वतन्त्र देश नहीं हो जाता, जो अनिवार्य अकाल के समय अपने आहार का प्रबन्ध कर सके, मलेरिया, हैजा, इन्फ्लुएन्जा और दूसरी बीमारियो का इलाज करना जान जाये, तबतक हमें बच्चे पैदा करने का अधिकार नही है। पाठकों से मैं वह दु ख छिपा नही सकता, जो इस देश मे बच्चो का जन्म सुनकर मुझे होता है। मुझे यह मानना ही पडेगा कि मैंने वर्षों तक धैर्य के साथ इसपर विचार किया है कि स्वेच्छा-सयम के द्वारा हम सन्तानोत्पत्ति रोक ले। हिन्दुस्तान की आज अपनी मौजूदा आबादी की भी खोज-खबर लेने की ताकत नही है—मगर इसलिए नहीं कि उसे अतिशय आबादी का रोग है, बल्कि इसलिए कि उसके ऊपर वैदेशिक आधिपत्य है, जिसका मूलमंत्र ही उसे अधिकाधिक लूटते जाना है।

सन्तानोत्पत्ति रोकी क्योंकर जा सकेगी? यूरोप में जो अनैतिक और अप्राकृतिक या कृत्रिम साधन काम में लाये जाते है, उनसे नहीं, बल्कि आत्म-सयम और नियमित जीवन से। माता-पिता को अपने बालकों को ब्रह्मचर्य का अभ्यास कराना ही पडेगा। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार बालको के लिए विवाह करने की उम्र कम-से-कम २५ वर्ष की होनी चाहिए।

अगर हिन्दुस्तान की माताएँ यह विश्वास कर सके कि लडके-लडकियो को विवाहित जीवन की शिक्षा देना पाप है, तो आधे विवाह तो अपने-आप ही रुक जायेंगे। फिर, हमे अपनी गर्म जल-वायु के कारण लडकियो के शीघ्र रजस्वला हो जाने के झूठे सिद्धान्त मे भी विश्वास करने की जरूरत नही है। इस शीघ्र-परिपक्वता के समान दूसरा भद्दा अन्धविश्वास मैने नही देखा है। मै यह कहने का साहस करता हूँ कि यौवन से जल-वायु का कोई सम्बन्ध ही नही है। असमय के यौवन का कारण हमारे पारिवारिक जीवन का नैतिक और मानसिक वायुमण्डल है। माताएँ और दूसरे सम्बन्धी अबोध बच्चो को यह सिखलाना धार्मिक कर्त्तव्य-सा मान बैठते है कि 'इतनी बडी उम्र होने पर तुम्हारा विवाह होगा।' बचपन मे ही, बल्कि माँ की गोद मे ही, उनकी सगाई करदी जाती है। बच्चो के भोजन और कपडे भी उन्हे उत्तेजित करते है। हम अपने बालको को गुडियो की तरह सजाते है—उनके नही, बल्कि अपने सुख और घमड के लिए। मैने बीसो लडको को पाला है। बिना किसी कठिनाई के जो कपडा उन्हे दिया गया उन्होने उसे सानन्द पहन लिया है। लेकिन हमें उससे सतोष नही होता। उन्हे सैकडो तरह की गर्म और उत्तेजक चीजे खाने को देते है। अपने अन्धप्रेम में उनकी शक्ति की कोई पर्वा नही करते। इसका निश्चित परिणाम होता है—शीघ्र यौवन, असमय सन्तानोत्पत्ति, और अकाल मृत्यु। माता-पिता पदार्थपाठ देते है, जिसे बच्चे सहज ही सीख लेते है। विकारो के सागर मे वे आप डूबकर अपने लडको के लिए बे लगाम स्वच्छन्दता के आदर्श बन जाते है। घर मे किसी लडके के भी बच्चा पैदा होने पर खुशियाँ मनायी जाती, बाजे बजते और दावते उडती है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे वातावरण मे रहने पर भी हम और अधिक स्वच्छन्द क्यो न हुए ? मुझे इसमे जरा भी शक नही

है कि अगर उन्हे देश का भला मजूर है और वे हिन्दुस्तान को सबल, सुन्दर और सुगठित स्त्री-पुरुषो का राष्ट्र देखना चाहते है, तो विवाहित स्त्री-पुरुष पूर्ण संयम से काम लेगें और कम-से-कम अभी तो सन्तानोत्पत्ति करना बन्द कर देंगे। नव-विवाहितो को मै यही सलाह देता हूँ। कोई काम करते हुए छोडने से उसे शुरू में ही न करना कही सहज है, जैसे कि जिसने कभी शराब न पी हो उसके लिए जन्मभर शराब न पीना शराबी या अल्पसयमी के शराब छोडने से कही अधिक सहज है। गिरकर उठने से लाख दर्जे सहज सीधे खडे रहना है। यह कहना सरासर ग़लत है कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा केवल उन्हीको दी जा सकती है जो भोग भोगते-भोगते थक गये हो। निर्बल को तो ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने का कोई अर्थ ही नहीं है। फिर मेरा तो मतलब यह है कि हम बूढे हो या जवान, भोगो से ऊबे हुए हों या नही, हमारा इस समय धर्म है कि हम अपनी गुलामी की विरासत देनें को बच्चे पैदा न करे।

माता-पिताओ को मै यह भी खयाल दिला दूँ कि वे अपने पति या पत्नी के हको के तर्क के जाल में न पडें। भोग के लिए रज़ामन्दी की ज़रूरत पडती है, सयम के लिए नही। यह तो प्रत्यक्ष सत्य है।

जिस समय हम लोग एक शक्तिशाली सरकार के साथ जीवन-मरण की लडाई में लगे होगे, हमें अपनी सारी शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आत्मिक शक्ति की ज़रूरत पडेगी। जबतक हम प्राणो से भी प्रिय इस एक वस्तु की रक्षा नही करते, वह मिल नही सकती। इस व्यक्तिगत पवित्रता के बिना हम हमेशा ही गुलाम बने रहेगे। हम अपने को यह सोचकर धोखा न दें कि चूंकि हमारी समझ में यह सरकार बुरी है, इसलिए व्यक्तिगत पवित्रता में अंग्रेजो से घृणा करनी चाहिए। नैतिकता को आत्मिक उन्नति का साधन न मानते हुए भी शरीर से तो उसका

पालन वे खूब ही करते हैं। देश के राजनैतिक जीवन में जितने अंग्रेज लगे हुए हैं, उनमे हममे कही अधिक ब्रह्मचारी और कुमारियाँ हैं। हमारे यहाँ कुमारियाँ तो प्राय होती ही नही—जो थोडी साधुनी कुमारियाँ होती है, उनका कोई असर राजनैतिक जीवन पर नही रह जाता, मगर यूरोप में हजारो ही ब्रह्मचर्य को मामूली रूप में ग्रहण करते हैं।

अब मैं पाठको के सामने थोडे सीधे-सादे नियम रखता हूँ, जिनका आधार मेरा और मेरे कितने ही साथियो का अनुभव है —

१ लडके-लडकियो का पालन सीधे-सादे और प्राकृतिकरूप से यह पूरा विश्वास रखकर करना चाहिए कि वे पवित्र है और पवित्र रह सकते हैं।

२ अचार-चटनी या मिर्च-मसाले जैसे गर्म और उत्तेजक आहारो तथा मिठाई और तले-भुने हुए चिकने व भारी पदार्थो मे सब किसीको परहेज करना चाहिए।

३ पति-पत्नी को अलग कमरो मे रहना और एकान्त से बचना चाहिए।

४ शरीर और मन दोनो को बराबर अच्छे काम मे लगाये रहना चाहिए।

५ जल्दी सोने और जल्दी उठने के नियम की सख्त पाबन्दी होनी चाहिए।

६ सभी बुरे साहित्य से बचना चाहिए। बुरे विचारो की दवा भले विचार है।

७ विकारो को उत्तेजन देनेवाले थियेटर-सिनेमा नाच तमाशो से बचना चाहिए।

८ स्वप्न-दोष से घबराने की कोई ज़रूरत नही है। साधारण बलवान आदमी के लिए हर बार ठण्डे पानी से स्नान कर लेना ही इसका

सबसे अच्छा इलाज है। यह कहना गलत है कि स्वप्न-दोष से बचने के लिए कभी-कभी सम्भोग कर लेना चाहिए।

९ सबसे बडी बात तो यह है कि पति-पत्नी तक के बीच भी ब्रह्मचर्य को कोई असम्भव या कठिन न मानले। इसके विपरीत, ब्रह्मचर्य को जीवन का स्वाभाविक और साधारण अभ्यास समझना होगा।

१०. प्रतिदिन सच्चे दिल से पवित्रता के लिए की गयी प्रार्थना से आदमी दिनोदिन पवित्र होता है।

: ३ :

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन पूछते है—"ब्रह्मचर्य के मानी क्या है ? क्या उसका सोऽहो आना पालन करना शक्य है ? यदि शक्य हो, तो क्या आप उसका वैसा पालन करते है ?"

ब्रह्मचर्य का पूरा वास्तविक अर्थ है, ब्रह्म की खोज। ब्रह्म सबमें व्याप्त है। अतएव उसकी खोज अन्तर्ध्यान और उससे उत्पन्न होनेवाले अन्तर्ज्ञान से होती है। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियो के पूर्ण सयम के विना नही हो सकता। इसलिए सभी इन्द्रियो का तन, मन और वचन से सब समय और सब क्षेत्रो में सयम करने को ब्रह्मचर्य कहते है।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पूर्ण-रूप से पालन करनेवाले स्त्री-पुरुष केवल निर्विकारी ही हो सकते है। ऐसे निर्विकारी स्त्री-पुरुष ईश्वर के नजदीक रहते है। वे ईश्वरवत् है।

इसमें मुझे तिलमात्र भी शका नही है कि ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन

तन, मन और वचन से करना सम्भव है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि इस ब्रह्मचर्य की पूर्ण अवस्था को मैं अभी नही पहुँचा हूँ। यह जरूर है कि वहाँतक पहुँचने का मेरा प्रयत्न निरन्तर जारी है। इसी देह से उस स्थिति तक पहुँचने की आशा मैंने छोडी नही है। तन पर तो मैंने अपना काबू कर भी लिया है। जागृत अवस्था में मै सावधान रह सकता हूँ। वचन के सयम का पालन करना भी ठीक-ठीक सीखा है। पर विचार पर अभी मुझे बहुत-कुछ काबू करना बाकी है। जिस समय जिस बात का विचार करना हो उस समय केवल एक उसीके विचार आने के बदले दूसरे विचार भी आ जाया करते है। इससे विचारो मे परस्पर द्वद्व हुआ करता है।

फिर भी जागृत अवस्था मे मै विचारो को परस्पर टक्कर लेने से रोक सकता हूँ। मेरी यह स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार तो आ ही नही सकते, मगर निद्रावस्था में विचारो पर मेरा काबू कम रहता है। नीद मे अनेक प्रकार के विचार आते है, अकल्पित सपने भी आते ही रहते है, और कभी-कभी इसी देह की की हुई बातो की वासना भी जागृत हो उठती है। वे विचार जब गन्दे होते है तब स्वप्नदोष भी होता है। यह स्थिति विकारी जीवन की ही हो सकती है।

मेरे विचार के विकार क्षीण होते जा रहे है, किन्तु उनका नाश नही हो पाया है। यदि मैं विचारो पर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर सका होता, तो पिछले दस बरसो मे मुझे जो तीन कठिन बीमारियाँ हुई—पसली का दर्द, पेचिस और उदर-व्रण (अपेडिसाइटिस)—वे कभी नही होती। मैं मानता हूँ कि नीरोग आत्मा का शरीर भी नीरोग ही होता है। अर्थात् ज्यो-ज्यो आत्मा नीरोग-निर्विकार होती जाती है त्यो-त्यो शरीर भी नीरोग होता जाता है। इसका अर्थ यह नही है कि

नीरोग शरीर बलवान शरीर ही हो। बलवान आत्मा क्षीण शरीर मे भी वास करती है—ज्यो-ज्यो आत्म-बल बढता है त्यो-त्यो शरीर-क्षीणता बढती जाती है। पूर्ण नीरोग शरीर भी बहुत क्षीण हो सकता है।

बलवान शरीर मे बहुत करके रोग तो रहते ही है। अगर रोग न भी हो तो भी वह शरीर सक्रामक रोगो का शिकार तुरन्त हो जाता है, परन्तु पूर्ण नीरोग शरीर पर सक्रामक रोगो की छूत का कोई असर नही पड सकता। शुद्ध खून मे ऐसे कीटो को दूर रखने का गुण होता है।

ऐसी अद्भुत दशा दुर्लभ तो है ही, नही तो अबतक मै वहांतक पहुँच गया होता—क्योकि, मेरी आत्मा साक्ष्य देती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए जिन उपायो का अवलम्बन करने की आवश्यकता है उनमे मै मुंह मोडनेवाला नही हूँ। ऐसी कोई बाह्य वस्तु नही है, जो मुझे उनसे दूर रखने मे समर्थ हो। परन्तु पिछले सस्कारो को धो बहाना सबके लिए सरल नही होता। इसलिए गोकि देर हो रही है तो भी मै जरा भी हिम्मत नही हार बैठा हूँ, क्योकि मै निर्विकार अवस्था की कल्पना कर सकता हूँ, उसकी धुंधली झलक भी कभी-कभी देख सकता हूँ, और जो प्रगति मैने अबतक की है वह मुझे निराश करने के बदले मुझमे आशा ही भरती है। फिर भी यदि मेरी आशा पूर्ण न हो और मेरा शरीर-पात हो जाये, तो भी मै अपने को निष्फल हुआ न मानूंगा। क्योकि जितना विश्वास मुझे इस देह के अस्तित्व पर है उतना ही पुनर्जन्म पर भी है, इसलिए मै जानता हूँ कि थोडा-सा प्रयत्न भी कभी व्यर्थ नही जाता।

आत्मानुभव का इतना वर्णन करने का कारण यही है कि जिन लोगो ने मुझे पत्र लिखे है उनको तथा उनके सदृश दूसरो को इससे धीरज हो और उनका आत्म-विश्वास बढे। सबकी आत्मा एक है। सबकी आत्मा

की शक्ति एक-सी है। कई लोगो की शक्ति प्रकट हो चुकी है, दूसरो की प्रकट होने को बाकी है। प्रयत्न करने से उन्हे भी वह अनुभव जरूर ही मिलेगा।

यहाँतक मैने व्यापक अर्थ मे ब्रह्मचर्य का विवेचन किया। ब्रह्मचर्य का लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो केवल विषयेन्द्रिय का ही मन, वचन और काया के द्वारा सयम माना जाता है। यह अर्थ वास्तविक है, क्योंकि इसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रिय के सयम पर उतना जोर नही दिया गया है। इससे विषयेन्द्रिय का सयम इतना मुश्किल बन गया है—लगभग अशक्य हो गया है। फिर जो शरीर रोग से अशक्त हो गया है, उसमे विषय-वासना हमेशा अधिक रहती है—यह वैद्यो का अनुभव है। इसलिए भी हमारे रोग-ग्रस्त समाज को ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन जान पडता है।

ऊपर मै क्षीण किन्तु नीरोग शरीर के विषय मे लिख आया हूँ। कोई उसका अर्थ यह नही लगाये कि शरीर-बल बढाना ही नही चाहिए। मैने तो सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्य की बात अपनी अतिप्राकृत भाषा मे लिखी है। उससे शायद गल्तफहमी हो। लेकिन जो सब इन्द्रियो के पूर्ण सयम का पालन करना चाहता है उसे अन्त मे शरीर-क्षीणता का अभिनन्दन करना ही पडेगा। जब शरीर का मोह और ममत्व क्षीण हो जाये तब शरीर-बल की इच्छा रही नही सकती। परन्तु विषयेन्द्रिय को जीतनेवाले ब्रह्मचारी का शरीर अति तेजस्वी और बलवान होना चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है। जिसकी विषयेन्द्रिय को स्वप्नावस्था में भी विकार न हो वह जगद्वन्दनीय है। इसमे कोई शक नही कि उसके लिए दूसरे सयम सहज है।

इस ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे एक दूसरे भाई लिखते है—"मेरी स्थिति

दयनीय है। दफ्तर मे, रास्ते में, रात को, पढने समय, काम करते हुए, ईश्वर का नाम लेते हुए भी वही विचार आते रहते है। मन के विचार किस तरह काबू में रक्खे जाये ? स्त्री-मात्र के प्रति मातृ-भाव कैसे उत्पन्न हो ? आँख से शुद्ध वात्सल्य की ही किरणे किस प्रकार निकले ? दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मूल हो ? ब्रह्मचर्य-विषयक आपका लेख मैंने अपने पास रख छोडा है, परन्तु ऐसा लगता है कि मुझे उनसे ज़रा भी लाभ नही हो सकता।"

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। बहुतो की यह स्थिति होती है, परन्तु जबतक मन उन विचारो के साथ लडता रहता है तबतक भय करने का कोई कारण नही है। आँख यदि दोष करती हो तो उसे बन्द कर लेना चाहिए, कान यदि दोष करे तो उनमे रुई भर लेनी चाहिए। आँख को हमेशा नीची रखकर चलने की रीति हितकर है। इससे उसे दूसरी बाते देखने की फ़ुर्सत नही मिलती। जहाँ गन्दी बाते होती हो, अथवा गन्दे गीत गाये जा रहे हो, वहाँसे उठकर भाग जाना चाहिए। स्वादेन्द्रिय पर खूब काबू पैदा करना चाहिए। मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वाद नही जीता वह विषय को नही जीत सकता। स्वाद को जीतना बहुत कठिन है, परन्तु इस विजय की प्राप्ति पर ही दूसरी विजय की सम्भावना है। स्वद को जीतने के लिए एक नियम तो यह है कि मसालो को सर्वथा अथवा जितना हो सके उतना त्याग देना चाहिए, और दूसरा अधिक ज़ोरदार तरीका यह है कि इस भावना की वृद्धि हमेशा की जाये कि हम स्वाद के लिए नही बल्कि केवल शरीर-रक्षा के लिए ही भोजन करते है। हम स्वाद के लिए हवा नही लेते, बल्कि श्वास लेने के लिए लेते है। पानी हम केवल प्यास बुझाने के लिए पीते है। इसी प्रकार खाना भी महज़ भूख मिटाने के लिए ही

खाना चाहिए। हमारे माँ-बाप लडकपन से ही हमें इससे उल्टी आदत डालते है। हमारे पोषण के लिए नही बल्कि अपना दुलार दिखाने के लिए हमे तरह-तरह के स्वाद चखाकर हमें बिगाडते है। हमे ऐसे वायु-मण्डल का विरोध करना होगा।

परन्तु विषय को जीतने का सुवर्ण-नियम तो राम-नाम अथवा कोई दूसरा ऐसा मत्र ही है। द्वादश मन्त्र भी यही काम देता है। जिसकी जैसी भावना हो वह वैसे ही मत्र का जाप करे। मुझे लडकपन से राम-नाम सिखाया गया था और मुझे उसका सहारा बराबर मिलता रहता है, इसलिए मैने उसे सुझाया है। जो मत्र हम जपे उसमे हमे तल्लीन हो जाना चाहिए। भले ही मन्त्र जपते समय दूसरे विचार आया करे, मगर तो भी जो श्रद्धा रखकर मन्त्र का जाप करता रहेगा उसे अन्त मे सफलता अवश्य मिलेगी। मुझे इसमे रत्तीभर भी शक नही है। यह मत्र उसके जीवन का आधार बनेगा और उसे तमाम सकटो से बचायेगा। ऐसे पवित्र मन्त्रो का उपयोग किसीको आर्थिक लाभ के लिए हर्गिज नही करना चाहिए। इन मत्रो का चमत्कार हमारी नीति को सुरक्षित रखने मे है। और यह अनुभव प्रत्येक साधक को थोडे ही समय मे मिल जायेगा। हाँ, इतना याद रखना चाहिए कि इन मन्त्रो को तोते की तरह रटने से कुछ भी नही होगा। उसमे अपनी आत्मा लगा देनी चाहिए। तोते तो यत्र की तरह ऐसे मन्त्र पढते रहते है। हमे उन्हे ज्ञानपूर्वक पढना चाहिए। अवाञ्छनीय विचारो का निवारण करने की भावना रखकर, और इस श्रद्धा के साथ कि मन्त्र मे यह शक्ति है, हमे मन्त्र का जप करते रहना चाहिए।

: ४ :

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

कई विषय ऐसे है जिनपर मै प्रसगोपात्त ही लिखता हूँ और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ। यह विषय ही ऐसा है कि कहकर नही समझाया जा सकता। आप तो साधारण ब्रह्मचर्य के विषय मे कुछ सुनना चाहते है, जिन ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या 'समस्त इन्द्रियो का सयम है' उसके विषय में नही। लेकिन इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रो में बडा कठिन बतलाया गया है। यह बात ९९ फीसदी सच है सिर्फ १ फीसदी की कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम पडता है कि हम दूसरी इन्द्रियो को सयम मे नही रखते, खासकर जीभ को। जो अपनी जिह्वा को वश में रख सकता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणिशास्त्रियो का यह कहना सच है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दर्जे तक मनुष्य नही करता। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जीभ पर पूरा-पूरा निग्रह रखते है—कोशिश करके नहीं बल्कि स्वभाव से ही। वे केवल घास पर ही अपना गुजर करते है और सो भी महज पेट भरने लायक ही खाते है, खाने के लिए नही जीते। पर हम तो बिल्कुल इसके विपरीत करते है। माँ बच्चे को तरह-तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक पर प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम तरीका है। लेकिन ऐसा करते हुए हम उन चीजो का जायका बढाते नहीं बल्कि घटाते है। स्वाद तो भूख मे रहता है। भूख के वक्त सूखी

रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूख के आदमी को लड्डू भी फीके और बेस्वाद मालूम होगे। पर हम तो न जाने क्या-क्या खा-खाकर पेट को ठसाठस भरते है और फिर कहते है कि ब्रह्मचर्य का पालन नही हो पाता।

जो आँखें हमे ईश्वर ने देखने के लिए दी है, उन्हे हम मलिन करते है और देखनेलायक वस्तुओ को देखना नही सीखते। 'माता गायत्री क्यो न पढे, और बालको को वह गायत्री क्यो न सिखाये?' इसकी छानबीन करने के बदले अगर वह उसके तत्त्व—सूर्योपासना—को समझकर उनसे सूर्योपासना कराये तो कितना अच्छा हो? सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनो ही कर सकते है। मैने यह स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासना के मानी क्या है? यही कि अपना सिर ऊँचा रखकर, सूर्यनारायण के दर्शन करके, आँख की शुद्धि की जाये। गायत्री के रचयिता ऋषि थे—द्रष्टा थे। उन्होने कहा कि सूर्योदय मे जो काव्य है, जो सौंदर्य है, जो लीला है, जो नाटक है, वह और कही नही दिखाई दे सकता। ईश्वर-जैसा सूत्रधार अन्यत्र नही मिल सकता, और आकाश से बढकर भव्य रग-भूमि भी कही नही मिल सकती। पर आज कौन-सी माता बालक की आँखे धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है? बल्कि माता के भावो मे तो अनेक प्रपच रहते है। बडे-बडे घरो मे जो शिक्षा मिलती है, उसके फलस्वरूप तो लडका शायद बडा अफसर होगा, पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर मे जाने-बेजाने जो शिक्षा बच्चो को मिलती है उससे कितनी बाते वह ग्रहण कर लेता है? माँ-बाप हमारे शरीर को ढकते है, सजाते है, पर इससे कही शोभा बढ सकती है? कपडे बदन को ढकने के लिए है, सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए है, सजाने के लिए नही। अगर बालक का शरीर वज्र-सा दृढ

बनाना है, तो जाडे से ठिठुरते हुए लडके को हम अँगीठी के पास बैठाने के बदले मैदान में खेलने-कूदने भेज देंगे, या खेत में काम पर छोड देंगे। उसका शरीर दृढ बनाने का बस यही एक उपाय है। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर जरूर ही वज्र की तरह होना चाहिए। हम तो बच्चे के शरीर का सत्यानाश कर डालते हैं। उसे घर में रखने से जो झूठी गर्मी आती है, उसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। दुलार-दुलारकर तो हम उसका शरीर सिर्फ बिगाड पाते हैं।

यह तो हुई काड़े की बात। फिर घर में तरह-तरह की बातें करके हम बच्चे के मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उसकी शादी की बातें किया करते हैं, और इसी क़िस्म की चीजें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जगली ही क्यो नहीं बन गये? मर्यादा तोडने के अनेक साधनो के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो जाती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। यदि हम ब्रह्मचर्य के रास्ते से ये सब विघ्न दूर करदें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाये।

ऐसी हाल्त होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुकाबिला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करने के लिए हर क़िस्म के उपायो से काम लेना—गो-मास इत्यादि हर तरह की चीजें खाना। मेरे लडकपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मासाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो हम अग्रेजो की तरह हट्टे-कट्टे न हो सकेगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुक़ाबला करने का मौका आया तब वहाँ गो-मांस-भक्षण को स्थान मिला। सो, यदि आसुरी मत से

शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीज़ों का सेवन करना होगा। परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है, तब मैं अपनेआप पर तरस खाता हूँ। अभिनन्दन पत्र मे मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो, मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दन-पत्र का मजमून तैयार किया है, उन्हे पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किस चीज़ का नाम है। जिसके बाल-बच्चे हुए है, उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते है? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को तो न कभी बुखार आता है, न कभी सिर-दर्द होता है, न कभी खाँसी होती है, न कभी उदर-व्रण (अपेडिसाइटिस) होता है। डाक्टर लोग कहते है कि नारगी का बीज आँत मे रह जाने से भी अपेडिसाइटिस होता है। परन्तु जो शरीर स्वच्छ और निरोग हो उसमें ये बीज टिकेंगे ही कैसे? जब आँते शिथिल पड जाती है तब वे ऐसी चीज़ो को अपनेआप बाहर नही निकाल सकती। मेरी भी आँते शिथिल हो गयी होगी। इसीसे मैं कोई चीज़ हज़म न कर सका हूँगा। बच्चा ऐसी अनेक चीज़े खा जाता है। माता इसका कहाँ ध्यान रखती है? पर उसकी आँतो में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसलिए मै चाहता हूँ कि मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का श्रेय देकर कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज तो मुझसे अनेक गुणा अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूँ। हाँ, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बूंदें पेश की है, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताती है। ब्रह्मचर्य-पालन का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से भी मुझमे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह

एक कागज को स्पर्श करने से नही होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पडे तो वह ब्रह्मचर्य कौडी काम का नही। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत-शरीर को स्पर्श करके कर सकते है उसीका अनुभव जब हम किसी सुदरी-से-सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सके तभी हम ब्रह्मचारी है। यदि आप यह चाहते हो कि बालक-जैसा ब्रह्मचर्य प्राप्त करे, तो इसका अभ्यास-क्रम आप नही बना सकते, मुझ-जैसा अधूरा ही क्यो न हो, पर कोई ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रम से भी बढकर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगडा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगडा है, और सन्यास का तो नाम भी नही रह गया है। ऐसी हमारी असह्य अवस्था हो गयी है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुसरण करके तो आप पांच सौ वर्षो के बाद भी पठानो का मुकाबला न कर सकेगे। हाँ, दैवी मार्ग का अनुसरण यदि आज हो तो आज ही पठानो का मुकाबला हो सकता है, क्योकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षण मे हो सकता है, जबकि शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते है। मगर इस दैवी मार्ग का अनुसरण हमसे तभी होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेगे।

: ५ :

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

क मित्र महादेव देसाई को लिखते है —

"आपको याद होगा कि 'नवजीवन' मे ब्रह्मचर्य पर लिखे एक लेख मे, जिसका कि आपने 'यगइडिया' के लिए अनुवाद किया था, गाधीजी ने कबूल किया था कि उन्हे अब भी कभी-कभी स्वप्नदोष हो जाया करता है। उसे पढने के साथ ही मुझे लगा कि ऐसे लेखो मे कोई लाभ नही हो सकता। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह भय निर्मूल नही था।

"विलायत के प्रवास मे प्रलोभनो के रहते हुए भी मैने और मेरे मित्रो ने अपना चरित्र निष्कलक रक्खा। स्त्री, मदिरा और मास से हम बिल्कुल बचे रहे। मगर गाधीजी का लेख पढकर एक मित्र ने कहा, 'गाधीजी के भीष्म प्रयत्नों के बाद भी अगर उनकी यह हालत है, तो हम किस खेत की मूली है? ब्रह्मचर्य-पालन का प्रयत्न बेकार है। गाधीजी की स्वीकारोक्ति ने मेरी दृष्टि ही बिल्कुल बदल दी। आज से तुम मुझे गया-बीता समझ लो।' कुछ झिझक के साथ मैने उससे बहस करने की कोशिश की। जो दलीले आप या गाधीजी पेश करते, वैसी ही मैने दी। कहा, 'अगर यह रास्ता गाधीजी जैसो के लिए भी इतना कठिन है, तो हमारे-तुम्हारे लिए जरूर ही और भी अधिक मुश्किल होना चाहिए। इसलिए हमें दुगनी कोशिश करनी चाहिए।' मगर सब बेकार रहा। आजतक जिस भाई का चरित्र निष्कलक रहा था, उसमें यो धब्बे लग गये। अगर

इस पतन के लिए कोई गाधीजी को ज़िम्मेदार कहे, तो वह या आप क्या कहेगे ?

"जबतक मेरे पास केवल एक ही उदाहरण था, मैंने आपको नही लिखा। शायद आप मुझे यह कहकर टाल देते कि यह अपवाद है। मगर बाद मे इसके और भी कई उदाहरण मिले, और मेरी आशका और भी पुष्ट हो गयी।

"मै जानता हूँ कि कुछ बाते ऐसी है, जो गाधीजी के लिए तो बहुत सहल है मगर मेरे लिए असभव है। परन्तु ईश्वर की कृपा से मै यह भी कह सकता हूँ कि कुछ बाते ऐसी भी हो सकती है जो गाधीजी के लिए असम्भव होकर भी मेरे लिए सम्भव हो। इसी ज्ञान या अहम्भाव ने मुझे अबतक गिरने से बचाया है, हालाँकि ऊपर लिखी गाधीजी की स्वीकारोक्ति ने मेरे मन से मेरे बेखतरेपने का भाव बिल्कुल डिगा दिया है।

"क्या आप गाधीजी का ध्यान इस ओर दिलायेगे, और खासकर तब जबकि वह अपनी आत्मकथा लिख रहे है ? सत्य और नगे सत्य को कह देना बेशक बहादुरी का काम है, मगर इससे पाठको मे गलतफहमी फैलने का डर है। मुझे भय है कि एक के लिए जो अमृत हो वही दूसरे के लिए कही ज़हर न हो जाये।"

इस शिकायत से मुझे कुछ ताज्जुब नही हुआ। जबकि असहयोग-आन्दोलन पूरे ज़ोर पर था, उस समय मैंने अपनी एक भूल स्वीकार की थी। इसपर एक मित्र ने निर्दोष भाव से लिखा था—"अगर यह भूल भी थी, तो आपको उसे भूल न मान लेना था। लोगो में यह विश्वास बढाना चाहिए कि कम-से-कम एक आदमी तो ऐसा है, जो गलती नही करता। आपको लोग ऐसा ही समझते थे। आपकी स्वीकारोक्ति से उनका दिल बैठ जायेगा।" इसपर मुझे हँसी आयी। मगर यह खयाल ही

मेरे लिए असह्य था कि लोगो को यकीन दिलाया जाये कि एक पतन-शील, चूकनेवाला आदमी, अपतनशील या अचूक है। किसी भी आदमी के सच्चे स्वरूप के ज्ञान से लोगो को लाभ हमेशा हो सकता है, हानि कभी नही। मै दृढतापूर्वक विश्वास करता हूँ कि मेरे तुरत ही अपनी भूले स्वीकार कर लेने से लाभ-ही-लाभ हुआ है। मेरे लिए तो हर हालत मे वह नियामत ही साबित हुआ है।

बुरे स्वप्न होना स्वीकार करना भी मै वैसी ही बात मानता हूँ। अगर सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हुए बिना मै इसका दावा करूँ, तो भी इससे ससार की मै बहुत बडी हानि करूँगा। क्योकि ब्रह्मचर्य मे दाग लगेगा और सत्य का प्रकाश धुंधला पडेगा। झूठे बहानो के जरिये ब्रह्मचर्य का मूल्य कम करने का साहस मै कैसे कर सकता हूँ? आज मै देखता हूँ कि ब्रह्मचर्य-पालन के जो तरीके मै बतलाता हूँ वे पूरे नहीं पडते, सभी जगह उनका एकसा असर नही होता क्योकि मै पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ नही। जबकि ब्रह्मचर्य का सच्चा रास्ता मै दिखा न सकूँ, ससार के लिए यह विश्वास करना, कि मै पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ, कितनी बडी भयकर बात होगी?

केवल इतना ही जानना दुनिया के लिए यथेष्ट क्यो न हो कि मै सच्चा शोधक हूँ, पूरा जाग्रत हूँ, सतत प्रयत्नशील हूँ और विघ्न-बाधाओ से डरता नही। औरो को उत्साहित करने के लिए इतना ही ज्ञान काफी क्यो न हो? झूठे प्रमाणो पर से नतीजे निकालना भूल है। जो बाते प्राप्त की जा चुकी है, उन्हीके आधार पर नतीजे निकालना सबसे अच्छा है। ऐसी दलील ही क्यो की जाये कि मेरे समान आदमी जब बुरे विचारो से न बच सका तो दूसरो के लिए कोई उम्मीद ही नही है? क्यो न सोचा जाये कि वह गांधी, जो एक समय काम-वासना मे डूबा हुआ था, आज अगर अपनी पत्नी के साथ भाई या मित्र के समान रह सकता है और

ससार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियो को भी बहन या बेटी के रूप मे देख सकता है, तो नीच-से-नीच और पतित मनुष्य के लिए भी उठने की आशा है ! अगर ईश्वर ने इतने विकारो से भरे हुए मनुष्य पर अपनी दया दिखायी, तो निश्चय ही वह दूसरो पर भी दया दिखायेगा ही ।

पत्र-लेखक के जो मित्र मेरी न्यूनताओ को जानकर पीछे हट पडे, वह कभी आगे बढे ही नही थे । यह तो झूठी साधुता कही जायेगी जो पहले ही धक्के मे चूर हो गयी । सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे ऐसे सनातन सत्य मेरे समान अपूर्ण मनुष्यो पर निर्भर नही रहते । उनका अडग आधार रहता है उन बहुतो की तपश्चर्या पर, जिन्होने उनके लिए प्रयत्न किया और उनका सम्पूर्ण पालन किया । उन सम्पूर्ण आत्माओ की बराबरी मे खडे होने की योग्यता जब मुझमे आ जायेगी तब आज की अपेक्षा मेरी भाषा मे कही अधिक निश्चय और शक्ति होगी । दरअसल स्वस्थ पुरुष उसीको कहेगे, जिसके विचार इधर-उधर दौडे नही फिरते, जिसके मन मे बुरे विचार नही उठते, जिसकी नीद मे स्वप्नो से व्याघात न पडता हो और जो सोते हुए भी सम्पूर्ण जाग्रत हो । उसे कुनैन लेने की ज़रूरत नही । उसके न बिगडनेवाले खून मे ही सभी विकारो को दबा लेने की आन्तरिक शक्ति होगी । शरीर, मन और आत्मा की उसी स्वस्थ अवस्था को पाने की मै कोशिश कर रहा हूँ । इसमे हार या असफलता नही हो सकती । पत्र-लेखक, उनके सशयालु मित्रो और दूसरो को मै अपने साथ चलने के लिए निमन्त्रण देता हूँ और चाहता हूँ कि पत्र-लेखक के ही समान वे मुझसे अधिक तेजी से आगे बढ चले । जो मेरे पीछे पडे है, वे मेरे उदाहरण से प्रोत्साहित होकर अपने मे विश्वास पैदा करे । जो कुछ मैने पाया है, वह सब अपने मे लाख कमजोरियो और विकाराधीन हो जाने की सभावना के होते हुए भी पाया है—और उसका

कारण है मेरा सतत-प्रयत्न और ईश्वर-कृपा मे अनन्त विश्वास।

इसलिए किसीको निराश होने की जरूरत नही है। मेरा महात्मा-पन कौडी काम का नही है। यह तो मेरे बाहरी अर्थात् राजनैतिक कामो के कारण है, जो मेरे सबसे छोटे काम है, और इसलिए यह दो दिनो में उड जायेगा। वास्तव मे मूल्यवान् वस्तु तो मेरा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य-पालन का आग्रह ही है, और यही मेरा सच्चा अग है। मेरा यह स्थायी अग चाहे कितना ही छोटा क्यो न हो, मगर नफरत की निगाह से देखने लायक नही है। यही मेरा सर्वस्व है। मै तो असफलताओ और भूल के ज्ञान को भी प्यार करता हूँ, क्योकि वे भी उन्नति-पथ की ही सीढियाँ है।

: ६ :

ब्रह्मचर्य के बारे में कुछ और

ब्रह्मचर्य और उसका पालन करने के साधनो के विषय मे मेरे पास पत्र आते ही चले जा रहे है। अत दूसरे अवसरो पर मै जो कुछ कह या लिख चुका हूँ उसे ही दूसरे शब्दो मे फिर से लिखता हूँ। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक सयम ही नही है, बल्कि उसका अर्थ है सभी इद्रियो पर पूर्ण अधिकार, और मन, वचन तथा शरीर से भी काम-वासना को छोड देना। इस रूप मे आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-प्राप्ति का यही सुगम और सच्चा रास्ता है।

आदर्श ब्रह्मचारी को कामेच्छा या सतान की इच्छा से कभी जूझना नही पडता, यह कभी उसे होती ही नही। उसके लिए सारा ससार एक विशाल परिवार होगा, मनुष्य-जाति के कष्ट दूर करने मे ही वह

अपने को कृतार्थ मानेगा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा उसे जहर की तरह अप्रिय लगेगी। जिसे मनुष्य-जाति के दुःख का पूरा-पूरा भान होगया है, उसे कभी कामेच्छा होगी ही नही। उसे अपने भीतर के शक्ति-कोष का पता अपने-आप ही लग जायेगा और उसे शुद्ध रखने की वह बराबर कोशिश करता रहेगा। उसकी नम्र शक्ति पर ससार श्रद्धा रक्खेगा और गद्दीनशीन बादशाहो से भी उसका प्रभाव बढा-चढा होगा।

लोग मुझसे कहते है, कि 'यह असम्भव आदर्श है, आप तो मर्द और औरत के बीच के स्वाभाविक आकर्षण का खयाल ही नही करते।' लेकिन यहाँ जिस कामुक सम्बन्ध का इशारा है, मै उसे स्वाभाविक मानने से ही इन्कार करता हूँ। अगर वह स्वाभाविक हो तब तो जल्दी ही हमारा सर्वनाश हो जायेगा। मर्द और औरत के बीच का स्वाभाविक सम्बन्ध वह है जो भाई और बहन मे, माँ और बेटे में, बाप और बेटी में होता है। उसी स्वाभाविक आकर्षण पर ससार टिका हुआ है। अगर मै सारी नारी-जाति को माँ, बहन या बेटी न मानूँ, तो अपना कार्य करना तो दूर, मै जी ही न सकूँगा। अगर काम-भरी आँखो से मै उनकी ओर देखूँ तो मेरे लिए नरक का सबसे सीधा और सच्चा रास्ता और क्या होगा ?

सन्तानोत्पत्ति स्वाभाविक क्रिया है जरूर, मगर निश्चित मर्यादा के भीतर। उस मर्यादा को तोडने से नारी-जाति खतरे में पडती है, समस्त जाति का पुरुषत्व नष्ट होता है, रोग फैलते है, पाप का बोलबाला होता है और संसार पाप-भूमि बनता है। कामनाओ के पजे मे फँसा हुआ मनुष्य बेलगर की नाव के समान होता है। अगर ऐसा आदमी समाज का नेता हो, अपने लेखो से वह समाज को व्याप्त करदे और लोग उसके पीछे चलने लगें, तो फिर समाज रहेगा कहाँ ? और, हो भी

तो आज वही रहा है। मानलो कि रोशनी के इर्द-गिर्द चक्कर काटने-वाला पतिंगा अपने क्षणिक आनन्द का वर्णन करे और उसे आदर्श मानकर हम उसकी नकल करे, तो हमारा कहाँ ठिकाना लगेगा? नही, अपनी सारी शक्ति लगाकर मुझे कहना ही पडेगा, कि पति और पत्नी के बीच भी काम का आकर्षण अस्वाभाविक है। विवाह का उद्देश्य दम्पती के हृदयो से विकारो को दूर करके उन्हे ईश्वर के निकट ले जाना है। पति-पत्नी के बीच भी काम-रहित प्रेम असम्भव नही है। मनुष्य पशु नही है। पशु-योनि में अनगिनत जन्म लेने के बाद वह उस पद पर आया है। उसका जन्म सिर ऊँचा करके चलने को हुआ है, लेटकर या पेट के बल रेगने को नही। पुरुषत्व से पाशविकता उतनी ही दूर है, जितना कि आत्मा से शरीर।

अन्त मे सक्षिप्त रूप से मै इसकी प्राप्ति के उपायो को दूंगा।

इसकी आवश्यकता को समझना पहला काम है।

दूसरा है, इन्द्रियो पर क्रमश अधिकार करना। ब्रह्मचारी को जीभ पर काबू पाना ही होगा। वह जीवन-धारण के लिए ही खा सकेगा, शौक के लिए नही। उसे केवल पवित्र वस्तुएं ही देखनी होगी और अपवित्र चीजो की ओर से आँखें मूंद लेनी होगी। इधर-उधर आँखे न नचाते हुए निगाह नीची करके रास्ता चलना शिष्टता का चिह्न है। इसी तरह ब्रह्मचारी कोई अश्लील या बुरी बात नही सुनेगा, कोई बहुत जबर्दस्त या उत्तेजक गध नही सूंघेगा। पवित्र मिट्टी की गध बनावटी इत्रो और सुगधियो से कही अच्छी होती है। ब्रह्मचर्य-पालन के इच्छुक को चाहिए कि वह जबतक जगता रहे तबतक अपने हाथ-पैरो से कोई-न-कोई अच्छा काम लेता ही रहे। वह कभी-कभी उपवास भी कर लिया करे।

तीसरा काम है, सच्चरित्र साथियो, निष्कलक मित्रो और पवित्र पुस्तको को रखना।

आखिरी (मगर किसीसे कम महत्त्व का नही) काम है, प्रार्थना। रोज नियमित रूप से पूरा मन लगाकर ब्रह्मचारी राम-नाम का जप किया करे और ईश्वर की सहायता मांगे।

साधारण स्त्री-पुरुषो के लिए इनमे कोई बात मुश्किल नहीं है। ये तो हद दर्जे की सहल बाते है। मगर इनकी सादगी से ही लोग घबराते है। जहां चाह है, वहां राह भी सहज ही मिल जायेगी। लोगो को इसकी चाह नही होती, इसीलिए वे व्यर्थ की ठोकरे खाते है। इस बात से कि ससार का आधार कमोवेश इसीपर है कि लोग ब्रह्मचर्य या सयम का पालन करते है, यही सिद्ध होता है कि यह आवश्यक और सम्भव है।

: ७ :

सन्तति-निग्रह

बहुत झिझक और अनिच्छा से मै इस विषय की चर्चा करने बैठा हूँ। मेरे दक्षिण अफ्रिका से हिन्दुस्तान लौटने के समय से ही पत्र-लेखक मेरे सामने कृत्रिम उपायो से सन्तति-निग्रह का सवाल उठाते रहे है। मैने उन्हे व्यक्तिगत उत्तर दिये है, मगर अभी तक जाहिरा तौर पर इस सवाल की चर्चा नही की है। अबसे ३५ साल पहले इस ओर मेरा ध्यान गया था, जबकि मै इग्लैण्ड मे पढता था। उस समय वहां एक सयमवादी, जो सन्तति-निग्रह के लिए सयम को छोड

और कोई उपाय मानता ही न था, और कृत्रिम उपायो के समर्थक एक डाक्टर के बीच बडी गर्म बहस चल रही थी। उसी कच्ची उम्र में कृत्रिम उपायो की ओर कुछ दिन झुकने के बाद मैं उनका पक्का विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूँ कि कुछ हिन्दी-समाचारपत्रो में ये उपाय ऐसे घृणित ढग से और खुले तौर पर छापे जा रहे हैं, कि उनसे मनुष्य की शिष्टता की भावना को सख्त धक्का लगता है। मैंने यह भी देखा कि एक लेखक कृत्रिम उपायो के हिमायतियो मे मेरा नाम लेते हुए भी नही झिझकता। लेकिन मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही है, जब मैंने इन उपायो के पक्ष में कुछ भी लिखा या कहा हो। इसी तरह मैंने दो अन्य बडे आदमियो के नामो का भी इसके पक्ष में इस्तैमाल किये जाते देखा है, हालाँकि उन लोगो से पूछे बिना उनका नाम छापने में मुझे सकोच होता है।

सन्तति-निग्रह की आवश्यकता के विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। लेकिन युगो से इसका केवल एक ही तरीका रहा है, और वह है आत्म-सयम या ब्रह्मचर्य। यह अचूक रामबाण दवा है, जिसकी साधना करनेवालो को लाभ-ही-लाभ होता है। अगर डाक्टर लोग सन्तति-निग्रह के उपाय निकालने के बदले आत्म-सयम के उपाय ढूँढें तो ससार उनका ऋणी रहेगा। सभोग का उद्देश्य सुख नही, बल्कि सन्तानोत्पादन है। जब सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न हो तब सम्भोग करना अपराध है, गुनाह है।

कृत्रिम साधनो का समर्थन करना मानो बुराई का हौसला बढाना है। वे स्त्री-पुरुषो को स्वच्छन्द बना देते हैं। इन उपायो को जो प्रतिष्ठा दी जाती है, उसके कारण हमारे ऊपर जो कुछ लोकमत का नियन्त्रण है उसके उठने में कोई देर न लगेगी। कृत्रिम उपायो के व्यवहार से

बुद्धिहीनता और मानसिक निर्वलता ही बढेगी। मर्ज़ से बुरा इलाज ही होगा। अपने कामो के फल से बचने के प्रयत्न करना पाप है, और अनुचित है। जो आदमी वहुत खाना खा लेता है, उसके लिए पेट का दर्द होना और उपवास करना अच्छा है। मनमाना खाना और तव हाजमे की या और दवाएं खाकर उसके फल से बचना अच्छा नही है। अपने पाशविक विकारो को तृप्त करने के वाद उसके नतीजो से बचना तो और भी अधिक बुरा है। प्रकृति को दया-माया नही है। वह अपने नियमो को ज़रा भी तोडने का पूरा वदला लेगी। नैतिक फल तो नैतिक सयम से ही मिल सकते है। दूसरे सभी सयमो से उनका उद्देश्य ही चौपट हो जाता है। कृत्रिम उपायो के समर्थक मूल ही से यह मानते है कि जीवन के लिए भोग आवश्यक है। पर इससे अधिक भ्रम और कुछ हो ही नही सकता। जो लोग वाल-बच्चो की सख्या का नियत्रण करना चाहते है, वे पुराने ऋपियो के निकाले उचित उपायो को ही ढूंढें और सोचे कि उनको कैसे जारी किया जा सकता है। उनके आगे काम का वहुत विशाल क्षेत्र पडा है। वाल-विवाहो से आवादी मे सहज ही वढती हो रही है। वर्तमान जीवन-क्रम भी बेरोक सतानोत्पादन का एक मुख्य कारण है। अगर ये कारण ढूंढ निकाले जाये और इनको दूर किया जाये तो समाज की नैतिक उन्नति होगी। अगर अधीर हिमायती उनकी ओर से आँखें मूंद ले और कृत्रिम उपायो का ही वाज़ार गर्म रहे, तो नतीजा नैतिक अध पतन के सिवा और कुछ हो ही नही सकता।

जो समाज अनेक कारणो से पहले ही इतना नि सत्त्व हो रहा है, कृत्रिम उपायो से वह और भी अधिक नि सत्त्व हो जायेगा। इसलिए उन लोगो के लिए, जो विना विचारे कृत्रिम उपायो का समर्थन कर

रहे है, इस विषय का फिर से अध्ययन करने, अपने हानिकारक प्रचार को रोक रखने और विवाहित-अविवाहित सबके लिए ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने से बेहतर काम और कुछ हो ही नही सकता। सन्तति-निग्रह का एकमात्र वही श्रेष्ठ और सीधा रास्ता है।

: ८ :

संयम या स्वच्छन्दता ?

सन्तति-निग्रह सम्बन्धी मेरे लेख के कारण, जैसी कि आशा की जाती थी, कुछ लोगो ने कृत्रिम साधनो के पक्ष में मुझे बडी जोरदार चिट्ठियाँ लिखी है। उनमे से सिर्फ तीन पत्र मैने नमूने के तौर पर चुन लिये है। एक और पत्र भी है, पर उसमे अधिकतर धर्म-चर्चा ही है, इसलिए उसे छोड देता हूँ। इनमे से एक पत्र यह है —

"मै मानता हूँ कि ब्रह्मचर्य ही सन्तति-निग्रह की रामबाण दवा है और इसके साधक को इससे लाभ भी होता है। लेकिन यह सयम का विषय है, सन्तति-निग्रह का नही। इसपर दो दृष्टियो से विचार किया जा सकता है—एक व्यक्ति की और दूसरी समाज की। काम-विकार को मारना व्यक्ति का फर्ज है, मगर इसमे वह सन्तति-निग्रह का विचार नही करता। सन्यासी मोक्ष प्राप्त करने की कोशिश करता है, न कि सन्तति-निग्रह की। सन्तति-निग्रह तो गृहस्थो का प्रश्न है। सवाल यह है कि एक आदमी कितने बच्चो को पाल सकता है ? आप मनुष्य-स्वभाव को तो जानते ही है। सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता पूरी हो जाने के बाद सम्भोग-सुख को छोडने के लिए कितने आदमी तैयार होगे।

स्मृतिकारो की तरह आप भी मर्यादा मे रहकर सम्भोगेच्छा पूरी करने की इजाजत तो देंगे ही। लेकिन इससे सन्तति-निग्रह या जन्म-मर्यादा का सवाल हल न होगा, क्योंकि अयोग्य प्रजा के मुकाबिले योग्य प्रजा अधिक तेजी से बढती है।

"सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से कितने मनुष्य सम्भोग करते है ? आप कहते है कि सन्तानोत्पत्ति के बिना सम्भोग करना पाप है। पर यह तो आप-जैसे सन्यासियो के लिए ही ठीक है। आप कहते है कि कृत्रिम साधनो का प्रयोग बुराई को बढाता है। उससे स्त्री-पुरुष उच्छृंखल हो जाते है। यदि यह सच हो तो आप बडा भारी इलजाम लगाते है। क्या कभी लोकमत के जरिये भी लोगो के विषय-भोग मर्यादित किये जा सके है ? लोग कहते है कि ईश्वर की इच्छा से सन्तान होती है, जिसने दांत दिये है वह दूध भी देगा ही। दूसरे, अधिक सन्तति का होना मर्दानगी का चिह्न समझा जाता है। क्या निश्चय ही कृत्रिम साधनो के प्रयोग से शरीर और मन दुर्बल हो जाते है ? लेकिन आप तो किसी भी प्रकार उनका उपयोग नही करने देना चाहते। क्योंकि अपने किये के फल से मुंह चुराना बुरा है, अनीति है। इसमें आप यह मान लेते है कि ऐसी भूख का जरा भी बुझाना अनीति है। पर यदि सयम का कारण डर हो तो उससे नैतिक परिणाम अच्छा न होगा। माता-पिता के पाप की भागी भला सन्तति किस नियम से हो ? बनावटी दांत, आँख इत्यादि के इस्तेमाल को कोई कुदरत के खिलाफ नही समझता। वही कुदरत के खिलाफ है जिससे हमारी भलाई नहीं होती। मै यह नही मानता कि स्वभाव से ही मनुष्य बुरा होता है, और इसके प्रचार से वह और भी बुरा बन जायेगा। आज भी पाप कुछ कम नही हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे अछूता नहीं है। बुद्धिमानी तो इसमें है कि हम इस नयी शक्ति

को काबू मे लाये, न कि इससे भाग चलें। कुछ अच्छे-से अच्छे कार्यकर्त्ता इनका प्रचार करना चाहते है, किन्तु उच्छृखलता के प्रचार के लिए नही बल्कि लोगो को आत्म-सयम के अभ्यास में मदद पहुँचाने के लिए। हमे स्त्रियो को भूल नही जाना चाहिए। उनकी आवश्यकताओ पर हमने बहुत दिनो तक ध्यान नही दिया है। वे सन्तानोत्पत्ति के लिए बतौर खेत या क्षेत्र के अपने शरीर का इस्तैमाल करने की इजाजत पुरुष को नही देती। कुछ रोग भी ऐसे है, जिन्हे मज्जातन्तुओ की निर्बलता की जोखिम उठाकर भी दूर करना चाहिए।"

मै यह बात पहले ही साफ किये देता हूँ कि वह लेख मैने न तो सन्यासियो के लिए लिखा था और न सन्यासी की हैसियत से। प्रचलित अर्थ के अनुसार मै सन्यासी होने का दावा भी नही करता। मैने जो कुछ लिखा है वह आजतक के अपने निजी अविच्छिन्न अभ्यास के बल पर लिखा है, जिसमें पच्चीस साल के बीच कही-कही मामूली-सा नियम-भग हुआ है। यही नही, मेरे उन मित्रो का अनुभव भी इसमे शामिल है, जिन्होने इस प्रयोग मे इतने वर्षो तक मेरा साथ दिया है और उनके अनुभवो से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते है। प्रयोग मे क्या युवक और क्या बूढे, सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष सम्मिलित है। मेरा दावा है कि यह प्रयोग कुछ अश तक तो वैज्ञानिक दृष्टि से भी ठीक था। हालाँकि इसका आधार बिलकुल नैतिक था, तो भी इसका आरम्भ सन्तति-निग्रह की अभिलाषा से हुआ था। इस प्रयोग के लिए खुद मेरा ही एक विलक्षण उदाहरण था। इसके बाद विचार करने पर उससे भारी-भारी नैतिक परिणाम निकले—पर निकले वे बिल्कुल स्वाभाविक क्रम से। मै यह दावा करता हूँ कि यदि विचार और विवेक से काम लिया जाये तो बिना ज्यादा कठिनाई के सयम का पालन सर्वथा सम्भव है। और

यह मुझ अकेले का ही दावा नही, वल्कि जर्मन और दूसरे प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्रियो का भी है। उनका तो कहना है कि जल तथा मिट्टी के प्रयोग से स्नायु सकुचित होते है और अनुत्तेजक तथा खासकर फलों के आहार से स्नायुओ का वेग शमन होता है, एव विषय-विकार को आदमी आसानी से जीत सकता है, और साथ ही उससे स्नायु पुष्ट व वलवान भी होते है। राजयोगियो का कहना है कि सिर्फ प्राणायाम ठीक तरह से करने से भी यही लाभ होता है। पूर्वी और पश्चिमी प्राचीन विधियाँ केवल सन्यासियो के लिए ही नही है, वल्कि, इसके विपरीत, वे खासकर गृहस्थो के लिए है। यदि यह कहा जाये कि वहुत अधिक आवादी के कारण ही कृत्रिम उपायों के ज़रिये सन्तति-निग्रह की ज़रूरत है, तो मुझे इसमे भी पूरी शका है, क्योकि यह वात अवतक सावित ही नही की गयी है। मेरी राय में तो यदि खेती के वँटवारे का समुचित प्रवन्ध कर दिया जाये, खेती सुधारी जाये और एक सहायक धन्धे की तजवीज करदी जाये, तो हमारा यह देश अपनी मौजूदा आवादी से दुगुने लोगो को आज भी पाल सकता है। मैंने तो इससे विल्कुल अलग यहाँ की राजनैतिक अवस्था की दृष्टि से ही सन्तति-निग्रह चाहनेवालो का साथ दिया है।

मेरा यह कहनाहै कि सन्तानोत्पत्ति की अभिलाषा पूरी हो जाने के वादमनुष्यो को विषय-भोग नही करना चाहिए। आत्म-सयम के उपाय लोकप्रिय और प्रभावकारक वनाये जा सकते है। शिक्षित लोगो ने कभी उनकी आजमाइश ही नहीं की। सयुक्त कुटुम्ब-प्रथा की वजह से उन्हे अभी यह भार महसूस ही नही हुआ है। जिन्होंने महसूस किया है, उन्होने उसके नैतिक पहलू पर विचार ही नही किया है। ब्रह्मचर्य पर कुछ इधर-उधर के व्याख्यानो के सिवाय, सन्तानोत्पत्ति को मर्यादित

करने के उद्देश्य से आत्म-सयम के प्रचार का कोई व्यवस्थित प्रयत्न नही किया गया है। वल्कि, उलटे, यही धारणा अव भी फैली हुई है कि वडा परिवार होना कुछ शुभ लक्षण है और इसलिए वाञ्छनीय है। धर्मोपदेशक आम तौर पर यह उपदेश नही देते कि मौका आने पर सन्तानोत्पत्ति को रोकना भी वैसा ही धर्म हो सकता है जैसा कि सन्तान की वृद्धि करना।

मुझे भय है कि कृत्रिम साधनो के हिमायती यह वात पक्की मान लेते है कि विषय-विकार की तृप्ति जीवन के लिए आवश्यक है और इसलिए अपने आप ही इष्ट वस्तु है। स्त्रियो के लिए जो चिन्ता प्रकट की जाती है वह तो अत्यन्त करुणा-जनक है। मेरी राय में तो कृत्रिम साधनो के जरिये सन्तति-निग्रह के समर्थन मे स्त्रियो को सामने ला रखना, उनका अपमान करना है। एक तो यो ही पुरुष-जाति ने अपनी विषय-तृप्ति के लिए उन्हे काफी नीचे गिरा डाला है, और अव कृत्रिम साधनो के हिमायतियो के उद्देश्य चाहे कितने ही भले क्यो न हो मगर वे उन्हे और नीचे गिराये विना नही रहेगे।

मै जानता हूँ कि आज कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी है जो खुद ही इन साधनो की हिमायत करती है। पर मुझे इस वात मे कोई शक नही है कि स्त्रियो की एक वहुत वडी तादाद इन साधनो को अपने गौरव के खिलाफ समझकर इनका निरादर करेगी। यदि पुरुष सचमुच स्त्री-जाति का हित चाहते है तो उन्हे चाहिए कि वे खुद ही अपने मन को वश में रक्खें। स्त्रियाँ पुरुषो को नही ललचाती। सच पूछो तो पुरुष ही खुद ज्यादती करता है और इसलिए वही सच्चा अपराधी और ललचानेवाला है।

मै कृत्रिम साधनो के समर्थको से आग्रह करता हूँ कि वे इसके नतीजो

पर गौर करे। इन साधनो के अतिशय उपयोग का फल होगा—विवाह-बन्धन का नाश और मनमाने प्रेम-सबध की वढती। कोई कहता है, मनुष्य के विषय-विकार की तृप्ति आवश्यक ही हो जाये तव क्या किया जाये ? इसका उत्तर सरल है। फर्ज कीजिए कि वह वहुत दिनो तक अपने घर से दूर है या वहुत समय तक लडाई में लगा है, या वह विधुर है, या उसकी पत्नी इस क़दर बीमार है कि कृत्रिम साधनो का उपयोग करते हुए भी उसकी विषय-तृप्ति के अयोग्य है। ऐसी अवस्था में वह क्या करेगा ? वही उसे उस समय भी करना चाहिए।

लेकिन दूसरे सज्जन लिखते हैं —

"सन्तति-निग्रह सम्बन्धी अपने लेख में आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधन विल्कुल हानिकारक है। लेकिन आप उसी वात को सिद्ध मान लेते हैं, जिसे कि साबित करना है। सन्तति-निग्रह-सम्मेलन (लदन, १९२२) में ३ मतो के विरुद्ध १६४ मतो से यह स्वीकार कर लिया गया था कि गर्भ को न ठहरने देने के उपाय स्वास्थ्यकर है, नीति, न्याय और शरीर-विज्ञान की दृष्टि से गर्भपात इससे बिल्कुल ही भिन्न है; और यह वात किसी भी प्रमाण से साबित नहीं हो पायी है कि ऐसे सर्वोत्तम उपाय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक या वध्यत्व के उत्पादक है। मेरी समझ में ऐसी सस्था की राय क़लम के एक ही झटके से रद नही की जा सकती। आप लिखते है कि वाह्य साधनो का उपयोग करने से तो शरीर और मन निर्बल हो जाने चाहिएँ। क्यो हो जाने चाहिएँ ? मै कहता हूँ कि उचित उपायो के इस्तैमाल से निर्बलता नही आती। हाँ, हानिकारक उपायो से ज़रूर आती है और इसलिए पुख्ता उम्र के लोगो को इसके योग्य उचित उपायों का सिखाना आवश्यक है। सयम के लिए आपके उपाय भी तो कृत्रिम साधन ही होगे। आप कहते है, सम्भोग

करना आनन्द के लिए नही बनाया गया है। किसने नही बनाया है? ईश्वर ने? तो फिर उसने सम्भोग की इच्छा ही किसलिए पैदा की? कुदरत के कानून मे कार्यो का फल अनिवार्य है। लेकिन आपकी यह दलील, जबतक आप यह साबित न करे कि कृत्रिम साधन हानिकारक है, कौडी काम की नही है। कार्यों के अच्छे-बुरे होने की पहचान उनके परिणाम से होती है। ब्रह्मचर्य के लाभ बहुत बढाकर कहे गये है। बहुत से डाक्टर २२ साल की या ऐसे ही कुछ उम्र के बाद सम्भोग के जरिये वीर्य पात न करने को हानिकारक मानते है। यह आपके धार्मिक आग्रह का परिणाम है कि आप सन्तानोत्पत्ति के हेतु के बिना संभोग को पाप मानते है। इसीसे सबपर आप पाप का आरोप करते है। शरीर-विज्ञान यह नही कहता। ऐसे आग्रहो के सामने विज्ञान को कम महत्त्व देने के दिन अब लद गये है।"

पत्र-लेखक शायद अपना समाधान नही चाहते। मैने तो यह दिखलाने के लिए काफी उदाहरण दे दिये है कि यदि हम विवाह-बन्धन की पवित्रता को कायम रखना चाहते है तो भोग नहीं बल्कि आत्म-सयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिए। जो बात सिद्ध करनी है उसीको मैने सिद्ध नही मान लिया है। मै तो यह कहता हूँ कि कृत्रिम साधन चाहे कितने ही उचित क्यो न हो, पर है वे हानिकारक ही। वे खुद चाहे हानिकारक न भी हो, पर वे इस तरह हानिकारक जरूर है कि उनके द्वारा विषय-विकार की भूख उद्दीप्त होती है और ज्यो-ज्यो उनका सेवन किया जाता है त्यो-त्यो बढती जाती है। जिसके मन को यह मानने की आदत पड गयी हो कि विषय-भोग न सिर्फ उचित ही है, बल्कि करने लायक चीज भी है, वह भोग मे ही सदा रत रहेगा और अन्त को इतना निर्बल हो जायेगा कि उसकी तमाम सकल्प-शक्ति नष्ट हो जायेगी।

मैं जोर के साथ कहता हूँ कि हर बार के विषय-भोग से मनुष्य की वह अनमोल शक्ति कम हो जाती है, जो क्या पुरुष, क्या स्त्री, दोनो के शरीर, मन और आत्मा को सशक्त रखने के लिए परमावश्यक है। इससे पहले मैंने इस विवाद से आत्मा शब्द को जान-बूझकर अलग रक्खा था, क्योंकि पत्र-लेखक उसके अस्तित्व का खयाल ही करते हुए नही दिखाई देते और इस बहस में मुझे सिर्फ उनकी दलीलो का ही जवाब देना है। हिन्दुस्तान में एक तो यो ही विवाहित लोगो की सख्या बहुत बडी है। फिर यह मुल्क नि सत्त्व भी काफी हो चुका है। यदि और किसी कारण से नही तो उसकी गयी हुई जीवनी शक्ति को वापस लाने के लिए ही उसे कृत्रिम साधनो के द्वारा विषय-भोग की नही बल्कि पूर्ण सयम की ही शिक्षा की जरूरत है। हमारे अखबारो को देखिए। अनीतिमूलक दवाइयो के विज्ञापन उनकी सूरत बिगाड रहे है। कृत्रिम साधनो के हिमायती उन्हे अपने लिए चेतावनी समझें। लज्जा या झूठे सकोच का कोई भाव मुझे इसकी चर्चा से नहीं रोक रहा है, बल्कि यह ज्ञान मुझसे सयम करा रहा है कि इस देश के जीवनी शक्ति से हीन और निर्बल युवक विषय-भोग के पक्ष में पेश की गयी सदोष युक्तियो के शिकार आसानी से बन जाते है।

अब शायद इस बात की जरूरत नही रह गयी है कि मैं पत्र-लेखक द्वारा उपस्थित डाक्टरी प्रमाण-पत्रो का जवाब दूं। मेरे पक्ष से उनका कोई सबब नही है। मैं इस बात की न तो पुष्टि ही करता हूँ और न इससे इनकार ही करता हूँ कि उचित कृत्रिम साधनो से अवयवो को हानि पहुँचती है या वन्ध्यापन होता है। डाक्टर लोग चाहे कितनी ही सुन्दरता से दलीलो की व्यूह-रचना क्यो न करे, मगर उनकी बदौलत उन सैकडो नौजवानो के जीवन का सत्यानाश असिद्ध नही हो सकता, जो पराई औरतो या खुद अपनी ही पत्नियो के साथ अति भोग-विलास के

कारण हुआ है और जिसे मैंने खुद देखा है।

पत्र-लेखक की दी हुई कृत्रिम दांत आदि की उपमा फबती हुई नहीं जान पडती। बनावटी दांत जरूर नकली और अस्वाभाविक होते है, पर उनसे कम-से-कम एक आवश्यकता की पूर्ति तो हो सकती है। इसके खिलाफ, विषय-भोग के लिए कृत्रिम साधनो का प्रयाग उस भोजन की तरह है जो भूख बुझाने के लिए नही बल्कि जीभ की तृप्ति के लिए किया जाता है। केवल जीभ के आनन्द केलिए भोजन करना उसी तरह पाप है जिस तरह कि विषय-भोग के लिए सम्भोग करना।

आखिरी पत्र मे एक नयी बात मिलती है —

"यह सवाल दुनिया के सभी राज्यो को चिन्तित कर रहा है। वेशक, आप यह तो जानते ही होगे कि अमेरिका इसके प्रचार के खिलाफ है। आपने यह सुना होगा कि जापान ने इसके प्रचार के बारे में आम इजाजत दे दी है। इसका कारण सबको विदित है। एक को अपनी आबादी बढानी है और दूसरे को सन्तानोत्पत्ति रोकनी थी। इसके लिए मनुष्य-स्वभाव का भी उन्हे विचार करना था। आपका नुसखा आदर्श हो सकता है। लेकिन क्या वह व्यावहारिक भी है? थोडे मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते है, लेकिन क्या जनता मे इसके सम्बन्ध मे की गयी किसी हलचल से कुछ मतलब हल हो सकता है? भारतवर्ष मे तो इसके लिए सामुदायिक हलचल की आवश्यकता है।"

मुझे अमेरिका और जापान की इन बातो की खबर नही थी। पता नही, जापान क्यो कृत्रिम साधनो का पक्ष ले रहा है। यदि लेखक की बात सही है और सचमुच जापान मे कृत्रिम साधन आम चीज हो रहे है, तो मै साहस के साथ कहता हूँ कि वह सुन्दर राष्ट्र अपने नैतिक सत्यानाश की ओर दौडा जा रहा है।

हो सकता है कि मेरा खयाल बिल्कुल गलत हो। सम्भव है कि मेरे निर्णय गलत सामग्री के आधार पर हो। लेकिन कृत्रिम साधनो के हामियो को धीरज रखने की जरूरत है। आधुनिक उदाहरणो के अलावा उनके पक्ष मे कोई सामग्री नही है। निश्चय ही एक ऐसे साधन के विषय मे, जो कि यो देखने मे ही मनुष्य-जाति के नैतिक भावो को घृणास्पद मालूम पडता है, किसी अश तक निश्चय के साथ कुछ भविष्य कथन करना बडी उतावली का काम होगा। यौवन के साथ खिलवाड करना तो बहुत आसान है, परन्तु ऐसे दुष्परिणामो को मिटाना टेढी खीर होगा।

: ६ :

मेरा व्रत

खूब चर्चा और दृढ विचार के बाद, १९०६ में, मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। व्रत लेने तक मैंने धर्मपत्नी से इस विषय मे सलाह न ली थी। व्रत के समय अलबत्ता ली। उसने इसका कोई विरोध नही किया।

यह व्रत लेते हुए मुझे बडा कठिन मालूम हुआ। मेरी शक्ति कम थी। मुझे चिन्ता रहती कि विकारो को क्योकर दबा सकूंगा? और स्वपत्नी के साथ भी विकारो से अलिप्त रहना एक अजीब बात मालूम होती थी। फिर भी मै देख रहा था कि यह मेरा स्पष्ट कर्त्तव्य है। मेरी नीयत साफ थी। इसलिए, यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति और सहायता देगा, मै कूद पडा।

आज २० साल के बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए मुझे आनन्द-पूर्ण आश्चर्य होता है। सयम-पालन करने का भाव तो मेरे मन में १९०१

से ही प्रबल था, और उसका पालन मै कर भी रहा था, परन्तु जो स्व-तन्त्रता और आनन्द मै अब पाने लगा वह मुझे नही याद पडता कि १९०६ के पहले मिला हो। कारण कि उस समय मै वासनाबद्ध था—हर समय उसके आधीन हो जाने का भय रहता था, किन्तु अब वासना मुझपर सवारी करने मे असमर्थ हो गयी।

फिर मै ब्रह्मचर्य की महिमा और अधिकाधिक समझने लगा। यह व्रत मैने फिनिक्स मे लिया था। घायलो की सुश्रूषा से छुट्टी पाकर मै फिनिक्स गया था। वहाँसे मुझे तुरन्त जोहान्सबर्ग जाना था। वहाँ जाने के एक महीने के अन्दर ही सत्याग्रह-सग्राम की नीव पडी मानो यह ब्रह्मचर्य-व्रत उसके लिए मुझे तैयार करने ही न आया हो! सत्याग्रह का खयाल मैने पहले ही से कर रक्खा हो, सो बात नही थी। उसकी उत्पत्ति तो बिना किसी इच्छा के अनायास ही हुई। पर मैने देखा कि उसके पहले मैने जो-जो काम किये थे—जैसे फिनिक्स जाना, जोहान्सबर्ग का भारी घर-खर्च कम कर डालना और अन्त को ब्रह्मचर्य का व्रत लेना—वे मानो इसकी पेशबन्दी थे।

ब्रह्मचर्य के सोलहो आने पालन का अर्थ है, ब्रह्म-दर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्रो द्वारा नही हुआ था। यह तो अपने अनुभव से धीरे-धीरे मुझे मालूम होता गया। उससे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र-वचन तो मैने बाद को पढे। ब्रह्मचर्य मे शरीर-रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्मा का रक्षण सब कुछ है—यह बात मै व्रत के बाद दिनोदिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा, क्योकि अब ब्रह्मचर्य को एक घोर तपश्चर्या रहने देने के बदले रसमय बनाना था, उसके बलपर काम चलाना था, इसलिए उसकी खूबियों के नित-नये दर्शन मुझे होने लगे।

पर मै जो इस तरह उससे रस की घूंटे पी रहा था, इससे कोई

यह न समझे कि मैं उसकी कठिनता को अनुभव नही कर रहा था। आज यद्यपि मेरे छप्पन साल पूरे होगये है, फिर भी उसकी कठिनता का अनुभव तो होता ही है। यह अधिकाधिक समझता जाता हूँ कि यह असिधारा-व्रत है। अब भी निरन्तर जागरूकता की आवश्यकता देखता हूँ।

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए पहले स्वादेन्द्रिय को वश में करना चाहिए। मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है। इस कारण इसके बाद मेरे भोजन-प्रयोग केवल अन्नाहार की दृष्टि से नही, पर ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे। प्रयोग द्वारा मैंने अनुभव किया कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का और स्वाभाविक रूप में करना चाहिए। मैंने खुद ६ साल तक प्रयोग करके देखा है कि ब्रह्मचारी का आहार वन के पके फल है। जिन दिनो मै हरे या सूखे वन के फलो पर रहता था, उन दिनो जिस निर्विकारता का अनुभव होता था वह खूराक मे परिवर्तन करने के बाद न हुआ। फलाहार के दिनो में ब्रह्मचर्य सरल था, दुग्धाहार के कारण अब कष्टसाध्य होगया है। फलाहार को छोडकर दुग्धाहार क्यो ग्रहण करना पडा, इसका जिक्र समय आने पर होगा ही। यहाँ तो इतना ही कहना काफी है कि ब्रह्मचारी के लिए दूध का आहार विघ्नकारक है, इसमें मुझे लेशमात्र सदेह नही। इसमे कोई यह अर्थ न निकाल ले कि हर ब्रह्मचारी के लिए दूध छोडना जरूरी है। आहार का असर ब्रह्मचर्य पर क्या और कितना पडता है, इस सम्बन्ध में अभी अनेक प्रयोगो की आवश्यकता है। दूध के सदृश शरीर के रग-रेशे को मजबूत बनानेवाला और उतना ही आसानी से हजम हो जानेवाला फलाहार अबतक मेरे हाथ नही लगा है। न कोई वैद्य,

हकीम या डाक्टर ऐसे फल या अन्न बता सके है। इस कारण दूध को विकारोत्पादक जानते हुए भी अभी मै उसके त्याग की सिफारिश किसी से नही कर सकता।

बाहरी उपचारो मे जिस प्रकार आहार के प्रकार और परिणाम की मर्यादा आवश्यक है उसी प्रकार उपवास की बात भी समझनी चाहिए। इन्द्रियाँ ऐसी बलवान है कि चारो ओर से ऊपर-नीचे दसो दिशाओ से जब उनपर घेरा डाला जाता है तभी वे कब्जे में रहती है। सब लोग इस बात को जानते है कि आहार के बिना वे अपना काम नही कर सकती। इसलिए इस बात में मुझे जरा भी शक नही है कि इन्द्रिय-दमन के हेतु से इच्छापूर्वक किये उपवासो से इन्द्रिय-दमन में बडी सहायता मिलती है। कितने ही लोग उपवास करते हुए भी सफल नही होते। वे यह मान लेते है कि केवल उपवास से ही सब काम हो जायेगा। वे बाहरी उपवास-मात्र करते है, पर मन में छप्पन भोगो का ध्यान लगाते रहते है। उपवास के दिनो में इन विचारो का स्वाद चखा करते है कि उपवास पूरा होने पर क्या-क्या खायेंगे और फिर शिकायत करते है कि न तो स्वादेन्द्रिय का सयम हो पाया और न जननेन्द्रिय का। उपवास से वास्तविक लाभ वही होता है जहाँ मन भी देह-दमन में साथ देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मन में विषय-भोग के प्रति वैराग्य हो जाना चाहिए। विषय का मूल तो मन में है। उपवासादि साधनो से मिलनेवाली सहायताएँ बहुत होते भी अपेक्षाकृत थोडी ही होती है। यह कहा जा सकता है कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयासक्त रहता है। परन्तु उपवास के बिना विषयासक्ति का समूल विनाश सम्भवनीय नही। इसलिए उपवास ब्रह्मचर्य-पालन का अनिवार्य अग है।

ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले बहुतेरे विफल होते है, क्योकि वे आहार-विहार तथा दृष्टि इत्यादि मे अब्रह्मचारी की तरह बर्ताव करते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते है। यह कोशिश वैसी ही है, जैसी कि गरमी के मौसम मे सरदी के मौसम का अनुभव करने की होती है। सयमी और त्यागी के जीवन में भेद अवश्य होना चाहिए। साम्य तो सिर्फ ऊपर ही रहता है। यह भेद स्पष्ट रूप से दिखाई देना चाहिए। आँख से दोनो काम लेते है, परन्तु ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक सिनेमा में लीन रहता है। कान का उपयोग दोनो करते है, परन्तु एक ईश्वर-भजन सुनता है, और दूसरा विलासमय गीतो को सुनने मे आनन्द मानता है। जागरण दोनो करते है, परन्तु एक तो जागृत अवस्था में अपने हृदय-मन्दिर मे विराजित राम की आराधना करता है, दूसरा नाच-रग की धुन मे सोने की याद भूल जाता है। भोजन दोनो करते है, परन्तु एक शरीर-रूपी तीर्थ-क्षेत्र को रक्षा-मात्र के लिए कोठे मे अन्न डाल देता है और दूसरा स्वाद के लिए देह में अनेक चीजो को भरकर उसे दुर्गन्धित बनाता है। इस प्रकार दोनो के आचार-विचार में भेद रहा ही करता है और अक्सर दिन-दिन बढता है, घटता नही।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियो का सयम। इस सयम के लिए पूर्वोक्त त्यागो की आवश्यकता है, यह बात मुझे दिन-दिन दिखाई देने लगी और आज भी दिखाई देती है। त्याग के क्षेत्र की सीमा ही नही है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प-प्रयत्न से साध्य नही होता। करोडो के लिए तो यह हमेशा एक आदर्श के रूप में ही रहेगा। क्योकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी तो नित्य अपनी त्रुटियो का दर्शन करेगा, अपने हृदय के कोने-कुचरे में छिपे विकारो को पहचान लेगा और उन्हे

निकाल बाहर करने का सतत उद्योग करेगा। जबतक अपने विचारो पर इतना कब्ज़ा न होजाये कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पाये तबतक वह सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य नही। जितने भी विचार है वे सब एक तरह के विकार है। उनको वश मे करने के मानी है मन को वश में करना और मन को वश मे करना वायु को वश में करने से कठिन है। इतना होते हुए भी यदि आत्मा कोई चीज़ है तो फिर यह भी साध्य होकर रहेगा। रास्ते में बडी कठिनाइयाँ आती है, इससे यह न मान लेना चाहिए कि वह असाध्य है। वह तो परम अर्थ है। और परम-अर्थ के लिए परम-प्रयत्न की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है?

परन्तु हिन्दुस्तान आने पर मैने देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य महज़ प्रयत्न-साध्य नही है। कह सकते है कि तबतक मै इस मूर्च्छा में था कि फलाहार से विकार समूल नष्ट हो जायेगे और इसलिए अभिमान से मानता था कि अब मुझे कुछ करना बाकी नही रहा है।

परन्तु इस विचार के प्रकरण तक पहुँचने मे अभी विलम्ब है। इस बीच इतना कह देना आवश्यक है कि ईश्वर-साक्षात्कार करने के लिए मैने जिस ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है उसका पालन जो करना चाहते है वे यदि अपने प्रयत्न के साथ ही ईश्वर पर श्रद्धा रखनेवाले होगे तो उन्हे निराश होने का कोई कारण नही है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते॥*

इसलिए आत्मार्थी का अन्तिम साधन तो रामनाम और राम-कृपा ही है। इस बात का अनुभव मैने हिन्दुस्तान आने पर ही किया।

*निराहारी के विषय तो शान्त हो जाते है, परन्तु रसो का शमन नही होता। ईश्वर-दर्शन से रस भी शान्त हो जाते है।

: १० :

गुह्य प्रकरण

जिन्होने आरोग्य के प्रकरण ध्यानपूर्वक पढे है, उनसे प्रार्थना है कि वे यह प्रकरण विशेष ध्यान से पढें और इसपर खूब विचार करे। दूसरे प्रकरण भी आयेगे और वे बहुत लाभदायक भी होगे, मगर इस विषय पर इसके समान महत्वपूर्ण कोई न होगा। मै पहले ही बतला चुका हूँ कि इस पुस्तक मे मैने एक भी बात ऐसी नही लिखी है, जिसका मैने खुद अनुभव न किया हो, या जिसे मै दृढतापूर्वक न मानता होऊँ।

आरोग्य की कई कुञ्जियाँ है और वे सब आवश्यक है, मगर उसकी मुख्य कुञ्जी तो ब्रह्मचर्य ही है। अच्छी हवा, अच्छी खूराक, अच्छा पानी वगैरा से हम तन्दुरुस्ती पैदा कर सकते है सही, मगर हम जितना कमाये उतना ही उडाते जाये तो कुछ न बचेगा। इसी प्रकार जितनी तन्दुरुस्ती मिले उतनी उडाये भी, तो पूँजी क्या बचेगी ? इसमे किसीके शक करने की जगह ही नही है कि आरोग्य-रूपी धन का सचय करने के लिए स्त्री और पुरुष दोनो को ही ब्रह्मचर्य की पूरी-पूरी जरूरत है। जिन्होने अपने वीर्य का सचय किया है, वे ही वीर्यवान—बलवान—कहलाते है।

सवाल होगा, कि ब्रह्मचर्य है क्या ? पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का भोग न करना ही ब्रह्मचर्य है। 'भोग न करने' का अर्थ एक-दूसरे को विषय की इच्छा से स्पर्श न करनाभर ही नही है, बल्कि इस बात का विचार भी न करना है। स्वप्न भी न होना चाहिए।

स्त्री को देखकर पुरुष विह्वल न हो जाये और पुरुष को देखकर स्त्री विह्वल न बने। प्रकृति ने जो गुह्य शक्ति हमे दी है, उसे दबाकर अपने शरीर मे ही सग्रह करना और उसका उपयोग केवल अपने शरीर के ही नही बल्कि मन के, बुद्धि के, और स्मरणशक्ति के स्वास्थ्य को बढाने मे करना चाहिए।

किन्तु हमारे आस-पास क्या दिखलाई पडता है? छोटे-बडे, स्त्री-पुरुष सभी इसम डूबे पडे है। ऐसे समय हम पागल बन जाते है, हमारी बुद्धि ठिकाने नही रहती, हमारी आँखे परदे से ढँक जाती है, हम कामाध बन जाते है। काम-मुग्ध स्त्री-पुरुषो और लडके-लडकियो को मैने बिल्कुल पागल बन जाते हुए देखा है। मेरा अपना अनुभव भी इससे जुदा नही है। मै जब जब इस दशा मे आया हूँ, तब-तब अपना भान भूल गया हूँ। यह चीज ही ऐसी है। इस प्रकार हम एक रत्तीभर रति-सुख के लिए मनभर शक्ति पलभर मे गँवा बैठते है। जब मद उतरता है, हम रक बन जाते है। दूसरे दिन सवेरे हमारा शरीर भारी रहता है, हमे सच्चा चैन नहीं मिलता, हमारी काया शिथिल हो जाती है, हमारा मन ठिकाने नही रहता।

यह सब ठिकाने लाने, रखने, के लिए हम भर-भर कढाई दूध पीते है, भस्म फाँकते है, याकूती लेते है और वैद्यो से 'पुष्टई' माँगा करते है। किस खूराक से कामोत्तेजना बढेगी—बस इसकी खोज करते है। यो दिन जाते है, और ज्यो-ज्यो वर्ष बीतते है त्यो-त्यो हम अग से और बुद्धि से हीन होते जाते है और बुढापे मे हमारी मति मारी गयी-सी दिखलाई पडती है।

सच पूछो तो ऐसा होना ही नही चाहिए। बुढापे मे बुद्धि मन्द होने के बदले तेज होनी चाहिए। हमारी हालत तो ऐसी होनी चाहिए कि

इस देह के अनुभव हमको और दूसरो को भी लाभदायक हो सके। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसकी वैसी ही स्थिति रहती है। उसे मरने का भय नही रहता, और न वह मरते समय ईश्वर को भूलता ही है। वह झूठी तोवा कही करता। उसे मरण-काल के उत्पात नही सताते, और वह मालिक को अपना हिसाब हँसते-हँसते देने जाता है। ऐसे ही लोग सच्चे स्त्री-पुरुष है और उन्हीका आरोग्य सच्चा कहा जायेगा।

साधारणतया हम यह विचार नही करते कि इस जगत मे मौज-मज़ा, डाह, ईर्ष्या, वडप्पन आडम्बर, क्रोध, अधीरता, ज़हर वगैरा की जड हमारे ब्रह्मचर्य के भग मे ही है। यो हमारा मन अपने हाथ मे न रहे, और हम हररोज़ एकवार या वार-वार छोटे वच्चे से भी अधिक मूर्ख वन जाये, तो फिर जान-वूझकर या अनजान मे हम कितने पाप न कर वैठते होगे? उस दशा मे क्या हम घोर पाप करने से भी रुकेगे?

लेकिन आप पूछेगे, 'ऐसे सच्चे ब्रह्मचारी को देखा किसने है? अगर सभी कोई ऐसे ब्रह्मचारी वन जाये, तो क्या दुनिया का सत्यानाश नही होजायेगा?" इस प्रश्न के धार्मिक पहलू को छोडकर, केवल, दुनियावी दृष्टि से ही हम इसपर विचार करेगे। मेरे मत मे इन दोनो सवालो की जड मे हमारी कायरता और डरपोकपन घुसा हुआ है। हम ब्रह्मचर्य का पालन करना नही चाहते, इसलिए उसमें से भागने के रास्ते ढूँढते फिरते है। इस दुनिया में ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले कितने ही भरे पडे है, परन्तु अगर वे गली-गली मारे-मारे फिरे तो फिर उनकी कीमत ही क्या रहे? हीरा निकालने के लिए भी पृथ्वी के पेट में हजारो मज़दूरो को घुसना पडता है और तो भी जब ककर-पत्थर के पहाड से ढेर लग जाते है तब कही मुट्ठीभर हीरा हाथ आता है। तव ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले हीरे को ढूंढने मे कितना परिश्रम करना होगा?

इसका हिसाब सहज ही त्रैराशिक मे सभी कोई जोड सकते है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से सृष्टि बन्द हो जाये, तो इससे हमें क्या मतलब? हम कोई ईश्वर नही है। जिन्होने सृष्टि बनायी है, वे स्वय सँभाल लेंगे। दूसरे इसका पालन करेगे या नहीं, यह भी हमारे सोचने की बात नही है। हम व्यापार, वकालत वगैरा धन्धे शुरू करते समय तो यह नही सोचते कि अगर सब कोई धन्धे शुरू करदें तो? ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले स्त्री-पुरुषो को इसका जवाब सहज ही मिल जायेगा।

ससारी आदमी ये विचार अमल मे कैसे ला सकते है? विवाहित लोग क्या करे? लडकेवाले क्या करे? जो काम को वश में न रख सके, वे बेचारे क्या करे?

हमने यह देख लिया कि हम कहाँतक ऊँचे जा सकते है। अगर हम अपने सामनें यही आदर्श रक्खें तो उसकी हूबहू या उसी-जैसी कुछ नकल उतार सकेगे। लडके को जब अक्षर लिखना सिखाया जाता है, तब उसके सामने सुन्दर-से-सुन्दर अक्षर रक्खे जाते है, जिससे वह अपनी शक्ति के अनुसार पूरी या अधूरी नकल करे। वैसे ही हम भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का आदर्श सामने रखकर उसकी नकल करने मे लग सकते है। विवाह कर लिया है, तो उससे क्या हुआ? प्राकृतिक नियम तो यह है कि जब सन्तति की इच्छा हो तभी ब्रह्मचर्य तोडा जाये। यो विचारपूर्वक जो दो-तीन या चार-पाँच वर्षो पर ब्रह्मचर्य तोडेगा, वह बिल्कुल पागल नहीं बनेगा और उसके पास वीर्यरूपी शक्ति की पूँजी भी ठीक जमा रहेगी। लेकिन, अफसोस! ऐसे स्त्री-पुरुष क्वचित ही दिखाई पडते है, जो केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही सम्भोग करते हो। ज्यादातर तो अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए ही सम्भोग करते है। फल यह होता है कि उन्हे इच्छा न होते हुए भी बाल-बच्चे हो जाते है। ऐसा विषय-भोग करते

हुए हम इतने अन्धे वन जाते है कि सामने कुछ देखते ही नही। इसमें स्त्री से अधिक गुनहगार पुरुष ही है। अपनी मूर्खता मे उसे स्त्री की निर्बलता का, सन्तान के पालन-पोषण की उसकी ताकत का, खयाल भी नही रहता। पश्चिम के लोगो ने तो इस बारे मे मर्यादा का उल्लघन ही कर दिया है। वे तो भोग भोगने और सन्तानोत्पत्ति के वोझ को दूर रखने के अनेक उपचार करते है। इन उपचारो पर किताबे लिखी गयी है और सन्तानोत्पत्ति रोकने के उपचारो का व्यापार ही चल निकला है। अभी तो हम इस पाप से मुक्त है। पर हम अपनी स्त्रियो पर बोझ लादते समय घडीभर भी विचार नही करते—इसकी पर्वा भी नही करते कि हमारी सन्तान निर्बल, वीर्यहीन, बावली व बुद्धिहीन बनेगी। उलटे, जब सन्तान होती है तब ईश्वर का गुण गाते है! हमारी इस दीन दशा को छिपाने का ढग है। हम इसे ईश्वरी कोप क्यो न मानें कि हमें निर्बल, पगु विषयी, डरपोक सन्तान होती है? बारह साल के लडके के भी लडका हो तो इसमें सुख की क्या बात है? इसमें आनन्दोत्सव क्या मनाना? बारह साल की लडकी माता बने तो इसे हम महाकोप क्यो न मानें? हम जानते है कि नयी बेल को फल लगेगे तो वह निर्बल होगी। हम इसका उपाय करते है कि जिससे उसे फल न लगें। पर बालिका-वधू के बालक-वर से सन्तान हो तो हम उत्सव मनाते है—मानो सामने खडी दीवार को ही भूल जाते है! अगर हिन्दुस्तान में या दुनिया में नामर्द लडके चीटियो की तरह पैदा होने लगें, तो इससे क्या दुनिया का उद्धार होगा? एक तरह से तो हमसे पशु भी अच्छे है। जब उनसे बच्चे पैदा कराने हो, तभी हम नर-मादा का मिलाप कराते है। सयोग के बाद गर्भ-काल मे और वैसे ही जन्म के बाद जबतक बच्चा दूध छोडकर बडा नही होता तबतक का समय बिल्कुल पवित्र गिनना चाहिए। इस काल

मे स्त्री और पुरुष दोनो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसके बजाय, हम घडीभर भी विचार किये बिना अपना काम करते ही चले जाते है। हमारा मन तो इतना रोगी है। इसीका नाम है असाध्य रोग। यह रोग मौत से हमारी मुलाकात कराता है। और जबतक मौत नही आती, हम पागल की तरह मारे-मारे फिरते है। विवाहित स्त्री-पुरुषो का खास फर्ज है कि वे अपने विवाह का गलत अर्थ न करते हुए, उसका शुद्ध अर्थ लगायें और सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के ही लिए ब्रह्मचर्य का भग करे।

लेकिन हमारी मौजूदा हालत में ऐसा बहुत मुश्किल है। हमारी खूराक, हमारी रहन-सहन, हमारी बाते, हमारे आसपास के दृश्य, सभी हमारी विषय-वासना को जगानेवाले है। हमारे ऊपर अफीम के समान विषय का नशा चढा रहता है। ऐसी स्थिति में विचार करके पीछे हटना कैसे बने? ऐसी शका उठानेवालो के लिए यह लेख नहीं लिखा गया है। यह लेख तो उन्हीके लिए है, जो विचार करके काम करने को तैयार हो। जो अपनी स्थिति पर सन्तोष करके बैठे हो, उन्हे तो इसे पढना भी मुश्किल मालूम होगा। पर जो अपनी कगाल हालत कुछ देख सके है और उससे घबरा उठे है, उन्हीकी मदद करना इस लेख का उद्देश्य है।

अभीतक जो कुछ कहा गया है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसे मुश्किल जमाने में अविवाहितो को ब्याह करना ही नहीं चाहिए, या करे बिना चले ही नही तो जहांतक हो सके देर करके करना चाहिए। नौजवानो को पच्चीस वर्ष की उम्र से पहले विवाह न करने का व्रत लेना चाहिए। आरोग्य-प्राप्ति के लाभ को छोडकर इस व्रत से होनेवाले और दूसरे लाभो का हम विचार नही करते, मगर उनका फायदा सभी कोई उठा सकते है।

जो माँ-बाप इस लेख को पढे, उनसे मुझे यह कहना है कि वे अपने बच्चो की बचपन में ही सगाई करके उन्हे बेचकर घातक बनते है। अपने बच्चो का लाभ देखने के बदले वे अपना अन्ध-स्वार्थ देखते है। उन्हें तो आप बडा बनना है, अपनी जाति-बिरादरी मे नाम कमाना है, लडके का व्याह करके तमाशा देखना है। यह ठीक नही। अगर वे लडके के सच्चे हितैषी है तो उसकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति पर ध्यान दें। भला बचपन में उन्हे घर-गृहस्थी की खटपट में डाल देने से बढकर उनका और कौन-सा बडा अहित हो सकता है ?

स्वास्थ्य की दृष्टि से यह ठीक ही है कि विवाहित स्त्री-पुरुष में से एक की मौत हो जाने पर दूसरा वैधव्य का पालन करे। कितने ही डाक्टरो की राय है कि जवान स्त्री-पुरुष को वीर्यपात करने का अवसर मिलना चाहिए। दूसरे कई डाक्टर कहते है कि किसी भी हालत में वीर्य-पात कराने की जरूरत नही है। जब डाक्टर यो लड रहे हो, तब अपने विचार को डाक्टरी मत का सहारा मिलने से ऐसा समझना ही नही चाहिए कि विषय में लीन रहना ही उचित है। मेरे अपने और दूसरो के अनुभवो से, जिन्हे मै जानता हूँ, मै बेधडक कहता हूँ कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिए विषय-भोग जरूरी नही है, यही नही बल्कि विषय-सेवन करने से—वीर्यपात होने से—स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचता है। कई बरसो मे प्राप्त शक्ति—तन और मन दोनो की—एक बार के वीर्यपात से इतनी अधिक जाती रहती है कि उसे लौटाने मे बहुत समय चाहिए, और उतना समय लगाने पर भी असल स्थिति आ ही नही सकती। टूटे शीशे को जोडकर उससे काम भले ही ले, मगर होगा तो वह टूटा हुआ ही।

लेकिन, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वीर्य-रक्षा के लिए स्वच्छ

हवा, स्वच्छ पानी और स्वच्छ विचार की पूरी जरूरत है। इस प्रकार नीति का आरोग्य के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। सम्पूर्ण नीतिवान् ही सम्पूर्ण आरोग्य पा सकता है। जिन्होने थोडे दिनो भी ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा, वे अपने शरीर और मन में बढा हुआ बल देख सकेगे। और एक बार जिसके हाथ पारस-मणि लग गयी, वह उसको अपने जीवन के साथ जतन करके बचा रक्खेगा। जरा भी चूका कि वह देख लेगा कि कितनी बडी भूल हुई है। मैंने तो ब्रह्मचर्य के अगणित लाभ जान लेने के बाद भी भूले की है और उनके कडवे फल भी पाये है। भूल के पहिले की मेरे मन की भव्य दशा और उसके बाद की दीन दशा की तसवीरे आँखो के सामने आया ही करती है। पर अपनी भूलो से ही मैंने इस पारसमणि की कीमत समझी है और ईश्वर की सहायता से इसका अखण्ड रूप से पालन करने की आशा रखता हूँ। मै खुद बचपन मे ही ब्याहा गया, बचपन मे ही अन्धा बना, बचपन मे ही बाप बनकर बहुत वर्षो बाद जागा। जगकर देखता हूँ तो अपने को महारात्रि मे पडा हुआ पाता हूँ। मेरे अनुभवो से और मेरी भूलो से अगर कोई एक पाठक भी चेत जायेगा, तो यह प्रकरण लिखकर मै अपने को कृतार्थ समझूँगा। यह भी त्रैराशिक के हिसाब जैसा ही है। बहुतेरे लोग कहते है और मै मानता हूँ, कि मुझमे उत्साह बहुत है। मेरा मन तो निर्बल गिना ही नही जाता। कितने तो मुझे हठी भी कहने है मेरे मन और शरीर मे रोग है, मगर मेरे ससर्ग मे आये हुए लोगो में मै अच्छा तन्दुरुस्त गिना जाता हूँ। अगर कमोबेश बीस साल तक विषय मे रहने के बाद मै अपनी यह हालत बना सका हूँ, तो वे बीस वर्ष भी अगर बचा सका होता तो आज मै कहाँ होता? मै खुद तो समझता हूँ कि मेरे उत्साह का पार ही नही होता और जनता की सेवा मे या अपने स्वार्थ मे ही मै इतना

उत्साह दिखलाता कि मेरी बराबरी करनेवाले की पूरी कसौटी हो जाती। इतना सार मेरे त्रुटि-पूर्ण उदाहरण में से लिया जा सकता है। जिन्होने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया है उनका शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल जिन्होंने देखा है, वही समझ सकते हैं। उनका वर्णन नही हो सकता।

इस प्रकरण को पढनेवाले समझ गये होगे कि जहाँ विवाहितों को ब्रह्मचर्य की सलाह दी गयी है, विधुर पुरुष को वैधव्य सिखलाया जाता है, वहाँ विवाहित या अविवाहित स्त्री पुरुष को दूसरी जगह विषय करने का मौका हो ही नही सकता। पर-स्त्री या वेश्या पर कुदृष्टि डालने के घोर परिणामो पर आरोग्य के विषय में विचार नही किया जा सकता। यह तो धर्म और गहरे नीति-शास्त्र का विषय है। यहाँ तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पर-स्त्री और वेश्या-गमन से आदमी सुजाक वगैरा नाम न लेने लायक बीमारियो मे सडते हुए दिखाई पडते हैं। कुदरत तो ऐसी दया करती है कि इन लोगो के आगे पापो का फल तुरत ही आ जाता है। तो भी वे आँखे मूँदें ही रहते है और अपने रागो के लिए डाक्टरो के यहाँ भटकते फिरते है। जहाँ परस्त्री-गमन न हो, वहाँ पर सौ में पचास डाक्टर बेकार हो जायेगे। ये बीमारियाँ मनुष्य-जाति के गले यो आ पडी है कि विचारशील डाक्टर कहते है, उनके लाख शोध करते रहने पर भी, अगर परस्त्री-गमन का रोग जारी रहा तो मनुष्य-जाति का अन्त नजदीक ही है। इसके रोगो की दवाएँ भी ऐसी जहरीली होती है, कि अगर उनसे एक रोग का नाश हुआ-सा लगता है तो दूसरे रोग घर कर लेते है और पीढी-दर-पीढी चल निकलते है।

अब विवाहितो को ब्रह्मचर्य-पालन का उपाय बताकर इस लम्बे प्रकरण को खत्म करना चाहिए। ब्रह्मचर्य के लिए सिर्फ स्वच्छ हवा-पानी और खूराक का ही खयाल रखने से काम नही चलेगा। इसके लिए तो

अपनी स्त्री के साथ भी एकान्त छोडना चाहिए। विचार करने से मालूम होता है कि विषय-सम्भोग के सिवा एकान्त की जरूरत ही नही होनी चाहिए। रात मे स्त्री-पुरुष को अलग-अलग कमरो मे सोना चाहिए। सारे दिन दोनो को अच्छे धन्धो और विचारो मे लगा रहना चाहिए। जिसमे अपने सुविचार को उत्तेजन मिले, ऐसी पुस्तके और ऐसे महापुरुषो के चरित्र पढने चाहिए। यह विचार बारम्बार करना चाहिए कि भोग मे तो दु ख-ही-दु ख है। जब-जब विषय की इच्छा हो आवे, ठण्डे पानी से नहा लेना चाहिए। शरीर में जो महाअग्नि है, वह इससे शान्त होकर पुरुष और स्त्री दोनो को फायदेमन्द होगी और दूसरा ही लाभदायक रूप धरकर उनका सच्चा सुख बढावेगी। ऐसा करना मुश्किल तो है, मगर मुश्किलो से जूझने के लिए ही तो हम पैदा हुए है। जिन्हे आरोग्य प्राप्त करना हो उन्हे इन मुश्किलो पर विजय प्राप्त करनी ही होगी।

: ११ :

सुधार या बिगाड़ ?

एक भाई, जिन्हे मै अच्छी तरह जानता हूँ, इस प्रकार लिखते है —

"बार-बार मन में यही सवाल होता है, कि क्या प्रचलित नीति प्राकृतिक है ? आपने 'नीति-धर्म' लिखकर प्रचलित नीति का समर्थन किया है। क्या सचमुच यह प्रचलित नीति प्राकृतिक है ? मेरा तो यह खयाल है कि यह प्राकृतिक नही है। क्योकि वर्तमान नीति के कारण ही तो मनुष्य विषय-भोग मे पशु से भी अधम बन गया है। आज की नीति की मर्यादा के कारण सन्तोषजनक विवाह-सम्बन्ध शायद ही कही होता होगा, नही होता, यह कहूँ तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। जब विवाह

का नियम न था, उस समय प्रकृति के नियमानुसार स्त्री-पुरुषों का समागम होता था और वह सुखद था। आज तो नीति के बन्धनों के कारण वह एक प्रकार की आफत हो गयी है, जिसमें सारा जगत् फँसा हुआ है और फँसता जाता है।

और नीति कहेंगे किसे ? एक की नीति दूसरे की अनीति होती है। एक एक ही पत्नी के साथ विवाह का होना स्वीकार करता है, दूसरा अनेक पत्नी करने की छूट देता है। कोई चाचा-मामा की सन्तानों के साथ विवाह-सम्बन्ध को त्याज्य मानते हैं तो कोई उसका समर्थन करते हैं। इसमें नीति किसे समझना चाहिए ? मैं तो यह कह सकता हूँ कि विवाह एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है, उसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पुराने जमाने के महापुरुषों ने देश-कालानुसार ही नीति की व्यवस्था की थी।

इस नीति के कारण संसार की कितनी हानि हुई है, यह भी देखिए —

१—प्रमेह (सुजाक), उपदंश (गरमी) इत्यादि रोग पैदा हुए। पशुओं में ये रोग नहीं होते, क्योंकि उनमें प्राकृतिक समागम होता है।

२—बालहत्याएँ हुईं यह लिखते हुए मेरा हृदय काँप उठता है। लेकिन केवल इस नैतिक विधान के ही कारण तो एक कोमल-हृदय माता क्रूर बनकर अपने बालक का गर्भ में ही या उसके गर्भ से बाहर आने पर नाश करती है।

३—बाल और बेमेल (जैसे, वृद्ध पति के साथ छोटी उम्र की लड़की का) विवाहों के फलस्वरूप होनेवाला समागम। ऐसे समागमों के ही कारण आज संसार, और उसमें भी खासकर हिन्दुस्तान, दुर्बल और हतवीर्य हो गया है।

४—ज़र, जोरू और ज़मीन इन तीनो के झगडो मे भी जोरू के लिए होनेवाले झगडे सर्वप्रथम है। ये भी आज की प्रचलित नीति के ही कारण है।

इन चार कारणो के सिवा दूसरे कारण भी होगे। यदि मेरी दलील ठीक है, तो क्या प्रचलित नीति मे कोई सुधार नही किया जाना चाहिए?

ब्रह्मचर्य को आप मानते है,यह ठीक है। परन्तु ब्रह्मचर्य राजी-ख़ुशी का होना चाहिए, ज़ोर-ज़बरदस्ती का नही। हिन्दू लोग लाखो विधवाओ से जबरदस्ती ब्रह्मचर्य का पालन कराते है। इन विधवाओ के हृदयो को तो आप जानते ही है। यह भी आप जानते ही है कि इसी कारण बाल-हत्याएँ होती है। तब आप उनके पुर्नविवाह के लिए ज़बरदस्त हलचल शुरू करे तो क्या बुरा? उसकी आवश्यकता भी कुछ कम नही है। आप उनके प्रति जितना चाहिए उतना ध्यान क्यो नही देते?"

मै समझता हूँ कि लेखक ने जो प्रश्न पूछे है, वे इस विषय पर मुझसे कुछ लिखाने के लिए ही पूछे है, क्योकि इसमे जिस पक्ष का समर्थन किया गया है उसका लेखक खुद भी समर्थन करते होगे, यह मै नही जानता, परन्तु मै यह जानता हूँ कि उन्होने जो प्रश्न पूछे है वैसे आजकल हिन्दुस्तान मे भी उठ रहे है। इनकी उत्पत्ति पश्चिम मे हुई है, और यह सब जानते है कि पश्चिम मे विवाह को पुरानी, जगली और अनीति की वृद्धि करनेवाली प्रथा माननेवालो की सख्या कुछ कम नही है। शायद वह सख्या बढ भी रही होगी। विवाह को जगली साबित करने के लिए पश्चिम मे जो दलीले दी जाती है उन सबको मैने नही पढा है। परन्तु ऊपर लेखक ने जैसी दलीले की है वैसी ही वे दलीले हो तो मेरे जैसे पुराण-प्रिय (अथवा यदि मेरा दावा टिक सकता हो तो सनातनी) को उनका खण्डन करने मे कोई मुश्किल या परेशानी नही होगी।

भूल की जड़ तो दरअसल इसी मे है कि हम मनुष्य की तुलना पशु के साथ करते हैं। मनुष्य पर जो नीति और आदर्श लागू होते है वे बहुतांश मे पशुनीति से भिन्न और श्रेष्ठ है, और इसी में मनुष्य की विशेषता है। अर्थात्, कुदरत के नियमो का जो अर्थ पशु-योनि के लिए किया जा सकता है वह मनुष्य-योनि पर हमेशा लागू नही होता। ईश्वर ने मनुष्य को विवेक-शक्ति दी है। पशु केवल पराधीन है। इसलिए पशु के लिए स्वतन्त्रता अथवा रुचि जैसी कोई चीज नही है, जबकि मनुष्य की अपनी रुचि होती है, वह सार-असार का विचार कर सकता है, और स्वतन्त्र होने के कारण पाप-पुण्य भी करता है। लेकिन जहाँ उसकी अपनी रुचि या पसन्द रक्खी गयी है, वहाँ उसके पशु से भी अधम बनने की भी गुंजाइश है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने दिव्य स्वभाव के अनुकूल चले वह आगे भी बढ सकता है। जगली-से-जगली दीखनेवाली जातियो में भी थोडे-बहुत अंशों मे विवाह का अकुश होता ही है। यदि यह कहा जाये कि वे अकुश के वश होते ही नहीं, तो उसका मतलब यह हुआ कि स्वच्छन्दता ही मनुष्य का नियम है। परन्तु यदि सब मनुष्य चौबीस घण्टे तक भी स्वेच्छाचारी बनकर रहें, तो सारे जगत् का नाश हो जायगा। न कोई किसी की मानेगा न सुनेगा, स्त्री और पुरुष मे मर्यादा का होना अधर्म गिना जायगा। फिर मनुष्य का विकार तो पशु की बनिस्बत कही अधिक होता है। इस विकार की लगाम ढीली की नहीं कि उसके वेग से उत्पन्न होनेवाली अग्नि ज्वालामुखी की तरह भभक उठेगी और ससार को एक क्षणमात्र में भस्म कर देगी। थोडा-सा भी विचार करे तो हमें मालूम होगा कि मनुष्य इस ससार में दूसरे अनेक प्राणियों पर जो अधिकार प्राप्त किये हुए है वह केवल सयम, त्याग और आत्मबलिदान, यज्ञ और कुरबानी के कारण ही प्राप्त किये हुए है।

उपदश, प्रमेह इत्यादि का उपद्रव विवाह के कारण नहीं बल्कि विवाह के नियमो का भग करने से, और मनुष्य के पशु न होते हुए भी पशु का अनुकरण करके दूषित बन जाने से होता है। विवाह के नियमो का पालन करनेवाले ऐसे एक भी व्यक्ति को मैं नही जानता जिसे इन भयकर रोगो का शिकार होना पडा हो। जहाँ-जहाँ ये रोग हुए है वहाँ-वहाँ अधिकाश में विवाह-नीति का भग करने से ही हुए है, अथवा उस नीति का भग करनेवालो के स्पर्श से हुए है—यह बात वैद्यकशास्त्र से भलीभाँति सिद्ध हो गयी है। बाल-विवाह और बाल-हत्या का निर्दय रिवाज भी इस विवाह-नीति के कारण नही, वरिक विवाह-नीति के भग से ही पैदा हुआ है। विवाह-नीति तो यह कहती है कि जब पुरुष अथवा स्त्री योग्य वय के हो, उन्हे सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो, तभी वे अमुक मर्यादा का पालन करते हुए अपने लिए योग्य पत्नी या पति ढूंढ ले अथवा उनके माता-पिता उसका प्रबन्ध करदें। जो साथी ढूँढा जाये उसमें भी आरोग्य इत्यादि के गुणो का होना आवश्यक है। इस विवाह-नीति का पालन करनेवाले मनुष्य, ससार में चाहे जहाँ जाकर देखिए, सुखी ही दिखाई देंगे। और जो बात बाल-विवाह के सम्बन्ध मे है वही वैधव्य के सम्बन्ध में भी है। विवाह-नीति के भग से ही दु ख-रूप वैधव्य उत्पन्न होता है। जहाँ विवाह शुद्ध हो वहाँ तो वैधव्य अथवा विधुरता सहज ही सुख-रूप और शोभा-रूप होते है। जहाँ ज्ञान-पूर्वक विवाह-सम्बन्ध जोडा गया है वहाँ वह सम्बन्ध केवल दैहिक ही नही बल्कि आत्मिक होता है। और आत्मा का सम्बन्ध तो ऐसा है जो देह छूट जाने पर भी भुलाया नही जा सकता। जहाँ इस सम्बन्ध का ज्ञान होता है वहाँ पुनर्विवाह असम्भव है, अनुचित है और अधर्म है। जिस विवाह में उपर्युक्त नियमो का पालन नही होता है, उस विवाह का नाम नही दिया

जाना चाहिए। और जहाँ विवाह नहीं होता, वहाँ वैधव्य अथवा विधुरता जैसी कोई चीज ही नहीं होती। यदि हम ऐसे आदर्श विवाह बहुत होते हुए नहीं देखते है, तो उससे विवाह की प्रथा नष्ट करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। हाँ, उसे उत्तम आदर्श के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करने के लिए वह एक सबल कारण अवश्य हो सकता है।

सत्य के नाम से असत्य का प्रचार करनेवालो की सख्या को देखकर यदि कोई सत्य का ही दोष निकाले और उसकी अपूर्णता सिद्ध करने का प्रयत्न करे तो हम उन्हे अज्ञानी कहेंगे। उसी प्रकार विवाह के भग के दृष्टान्तो से विवाह-नीति की निन्दा करने का प्रयत्न भी अज्ञान और अविचार का ही चिन्ह है।

लेखक का कहना है कि विवाह मे धर्म या नीति कुछ भी नही है, वह तो एक रूढि अथवा रिवाज है, और वह भी धर्म और नीति के विरुद्ध है, इसलिए उठा देने के लायक है। पर, मेरी अल्पमति के अनुसार तो विवाह धर्म की मर्यादा है और उसे उठा दिया जायेगा तो ससार में धर्म-जैसी कोई चीज़ ही नही रहेगी। धर्म की जड ही सयम अथवा मर्यादा है। जो मनुष्य सयम का पालन नहीं करता, वह धर्म को क्या समझेगा? पशु की बनिस्बत मनुष्य मे विकार बहुत ज्यादा होता है। दोनो मे जो विकार है उनकी तुलना ही नही की जा सकती। जो मनुष्य विकारो को अपने वश में नही रख सकता, वह ईश्वर को पहचान ही नही सकता। यह ऐसा सिद्धान्त है जिसके समर्थन की कोई आवश्यकता ही नही है क्योकि मै इस बात को स्वीकार करता हूँ कि जो लोग ईश्वर का अस्तित्व अथवा आत्मा और देह की भिन्नता को स्वीकार नही करते है, उनके लिए विवाह-बन्धन की आवश्यकता को सिद्ध करना बडा ही मुश्किल काम है। परन्तु जो आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता

है और उसका विकास करना चाहता है, उसे यह समझाने की आवश्यकता नही होगी कि देह का दमन किये बिना आत्मा की पहचान और उसका विकास असभव है। देह या तो स्वच्छन्दता का भाजन होगा अथवा आत्मा की पहचान करने के लिए तीर्थक्षेत्र होगा। यदि वह आत्मा की पहचान करने के लिए तीर्थक्षेत्र है, तो स्वेच्छाचार के लिए उसमें कोई स्थान ही नही है। देह को प्रतिक्षण आत्मा के वश मे लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

जमीन, जोरू और जर ये तीनो वही झगडे का कारण होते है जहाँ सयम-धर्म का पालन नही होता है। विवाह की प्रथा को मनुष्य जितने अशो मे आदर की दृष्टि मे देखते है उतने अशो मे स्त्री झगडे का कारण होने से बच जाती है। यदि पशु की तरह प्रत्येक स्त्री-पुरुष जहाँ जैसा चाहे वैसा व्यवहार रख सकते होते, तो मनुष्यो मे बडा झगडा होता और वे एक-दूसरे का नाश करते। इसलिए मेरा तो यह दृढ अभिप्राय है कि जिस दुराचार और जिन दोषो का लेखक ने उल्लेख किया है उनकी औषधि विवाह-धर्म का छेदन नही बल्कि उसका सूक्ष्म निरीक्षण और पालन करना है।

कही रिश्तेदारो मे सम्बन्ध जोडने की स्वतन्त्रता होती है और कही ऐसी स्वतन्त्रता नही होती। यह सच है कि यह नीति की भिन्नता है। कही एकपत्नी व्रत का पालन करना धर्म माना जाता है, और कही एक समय में कई पत्नियाँ रखने मे कोई प्रतिबन्ध नही होता। वाञ्छनीय तो यह है कि नीति की ऐसी भिन्नता न हो। परन्तु यह भिन्नता हमारी अपूर्णता की सूचक है, नीति की अनावश्यकता की हर्गिज नही। ज्यो-ज्यो हम अधिकाधिक अनुभव करते जायेगे त्यो-त्यो सब जातियो की और सभी धर्मो के लोगो की नीति में ऐक्य होता जायेगा। नीति के अधिकार को स्वीकार करनेवाला जगत् तो आज भी एकपत्नी व्रत को

आदर की दृष्टि से देखता हूँ। किसी भी धर्म मे अनेक पत्नी रखना आवश्यक नही है। अनेक पत्नी रखने की सिर्फ इजाजत दी हुई है। देश और काल को देख कोई छूट दी जाये तो उससे आदर्श कुछ बिगड़ता नही है और न उसकी कोई भिन्नता ही सिद्ध होती है।

विधवा-विवाह के सम्बन्ध मे मैं अपने विचारो को अनेक बार प्रकट कर चुका हूँ। बाल-विधवा के पुनर्विवाह को मैं इष्ट मानता हूँ, यही नही बल्कि मैं तो यह भी मानता हूँ कि उनका विवाह करना माता-पिता का कर्त्तव्य है।

: १२ :

वीर्य-रक्षा

कितनी ही नाजुक समस्याओ पर केवल एकात मे ही बातचीत करने की इच्छा रखते हुए भी उनपर प्रकट-रूप मे विचार करने के लिए पाठक मुझे क्षमा करे। परन्तु जिस साहित्य का मुझे मजबूरन अध्ययन करना पडा है, और ब्यूरो की पुस्तक (Towards Moral Bankruptcy) की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये है उनके कारण समाज के लिए इस परम महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकट चर्चा करना आवश्यक होगया है। एक मलाबारी भाई लिखते है —

"ब्यूरो की पुस्तक की अपनी आलोचना मे आप लिखते है कि ऐसा एक भी उदाहरण नही मिलता जिसमे ब्रह्मचर्य-पालन या दीर्घकाल के सयम से किसी को कुछ हानि पहुँची हो। लेकिन मुझे अपने लिए तो तीन सप्ताह से अधिक समय तक सयम रखना हानिकारक ही मालम

होता है। इतने समय के बाद प्राय मेरे शरीर मे भारीपन का तथा मन और शरीर मे बेचैनी का अनुभव होने लगता है, जिससे स्वभाव भी चिडचिडा हो जाता है। आराम तभी मिलता है, जब स्वाभाविक सम्भोग द्वारा या प्रकृति की कृपा से यो ही कुछ वीर्यपात हो लेता है। दूसरे दिन सुबह शरीर या मन की कमजोरी का अनुभव करने के बदले मे शान्त और हलका हो जाता हूँ और अपने काम मे अधिक उत्साह से लग जाता हूँ।

"मेरे एक मित्र को तो सयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ है। उनकी उम्र कोई ३२ साल की होगी। वह बडे ही कट्टर शाकाहारी और धर्मिष्ठ पुरुष है। उनमे शरीर या मन का एक भी दुर्व्यसन नही है। फिर भी दो साल पहले तक उन्हे स्वप्नदोष मे बहुत वीर्यपात हो जाया करता था, जिसके बाद वह बहुत कमजोर और निरुत्साह हो जाते थे। उसी समय पेट के दर्द की भी कोई बीमारी उन्हे होगयी। आखिर किसी देशी वैद्यराज की सलाह से उन्होने विवाह कर लिया, और अब वह बिल्कुल अच्छे है।

"ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता का, जिसपर हमारे सभी शास्त्र एकमत है, मै बुद्धि से तो कायल हूँ, किन्तु जिन अनुभवो का वर्णन मैने ऊपर किया है, उनसे तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्र-ग्रन्थियो से जो वीर्य निकलता है उसे शरीर मे ही पचा लेने की ताकत हममे नही है, जिससे वह ज़हर बन जाता है। अतएव मै आपसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि मेरे जैसे लोगो के लाभ के लिए, जिन्हे ब्रह्मचर्य और आत्म-सयम के महत्त्व के विषय मे कुछ सन्देह नही है, हठयोग या प्राणायाम के कुछ ऐसे साधन बतलाइए, जिनके सहारे हम वीर्य-रक्षा कर सके।"

इन भाइयो के अनुभव असाधारण नही है, बल्कि बहुतो के ऐसे ही अनुभवो के नमूने-मात्र है। ऐसे उदाहरण मै जानता हूँ, जबकि अधूरे प्रमाणो को ही लेकर साधारण नियम निकालने की उतावली की गयी है।

वीर्य-रक्षा करके उसे शरीर मे ही पचा लेने की योग्यता बहुत अभ्यास मे आती है। होना भी ऐसा ही चाहिए, क्योंकि किसी दूसरी साधना से शरीर और मन को इतनी शक्ति प्राप्त नही होती। माना कि दवाएं और यन्त्र शरीर को अच्छी कामचलाऊ दशा मे रख सकते है, किन्तु उनसे चित्त इतना निर्बल हो जाता है कि वह मनोविकारो का दमन नही कर सकता और वे मनोविकार जानी दुश्मन की तरह हर किसीको घेरे रहते है।

हम काम तो ऐसे करते है जिनसे लाभ के बदले हानि ही होनी चाहिए, परन्तु साधारण सयम से ही बहुत लाभ की आशा किया करते है। हमारा साधारण जीवन-क्रम विकारो को तृप्त करने के लिए ही बनाया जाता है, हमारा भोजन, साहित्य, मनोरजन, काम का समय, ये सभी कुछ इस तरह निश्चित होते है जिससे हमारे पाशविक विकारो को ही उत्तेजन और पोषण मिलता है। हममें से अधिकाश की इच्छा विवाह करने, बच्चे पैदा करने, और चाहे थोडे सयत रूप मे ही क्यो न हो किन्तु आम तौर पर सुख भोगने की ही होती है। और अखीर तक कमोबेश ऐसा ही क्रम चलता है।

किन्तु साधारण नियम के अपवाद जैसे हमेशा से होते आये है, वैसे अब भी होते है। ऐसे भी मनुष्य हुए है जिन्होने मानव-जाति की सेवा में, या यो कहिए कि भगवान् की ही सेवा मे, जीवन लगा देना चाहा है। वे विश्व-कुटुम्ब की और निजी कुटुम्ब की सेवा में अपना समय अलग-अलग बांटना नही चाहते। निश्चय ही ऐसे मनुष्यो के लिए इस प्रकार रहना सभव नही है, जिससे खास किसी व्यक्ति-विशेष की ही उन्नति सम्भव हो। जो भगवान् की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेगे, उन पुरुषो को जीवन की ढिलाइयो को छोड देना पडेगा और इस कठोर

सयम में ही सुख का अनुभव करना होगा। दुनिया में भले ही रहे, मगर वे 'दुनियवी' नही हो सकते। उनका भोजन, धन्धा, काम करने का समय, मनोरजन, साहित्य, जीवन का उद्देश्य आदि सर्व-साधारण मे अवश्य ही भिन्न होगे।

अव इसपर विचार करना चाहिए, कि क्या पत्र-लेखक और उनके मित्र ने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन को अपना ध्येय वनाया था और अपने जीवन को क्या उसी साँचे में ढाला भी था ? यदि उन्होने ऐसा नही किया था, तो फिर ऐसा समझने में कुछ कठिनाई नही होगी कि वीर्यपात से एक आदमी को आराम क्योकर मिलता था और दूसरे को निर्वलता क्यो होती थी। उस दूसरे आदमी के लिए तो विवाह ही दवा थी। अधिकाश मनुष्यो के मन मे अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जव विवाह का ही विचार भरा हो, तो उस स्थिति में उन मनुष्यो के लिए विवाह ही प्रकृत और इष्ट है। जो विचार दवाया न जाकर अमूर्त ही छोड दिया है, उसकी शक्ति, उस विचार की अपेक्षा, जिसको हम मूर्त कर लेते है, यानी जिनका अमल कर लेते है, कही अधिक होती है। जव उस क्रिया का हम यथोचित सयम कर लेते है, तो उसका असर विचार पर भी पडता है और विचार का सयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार पर अमल कर लिया है, वह कैदी-सा वन जाता और कावू में आ जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का सयम ही मालूम होता है।

मेरे लिए एक अखवारू लेख मे उन लोगो के लाभ के लिए, जो नियमित सयत जीवन विताना चाहते है, व्योरेवार सलाह देना ठीक न होगा। उन्हे तो मै कई वर्ष पहले इसी विषय पर लिखे हुए अपने ग्रन्थ "आरोग्य-विषयक सामान्य ज्ञान" को पढने की सलाह दूंगा। नये अनुभवो के अनुसार उसे कही-कही दुहराने की जरूरत अवश्य है, किन्तु उसमे

एक भी ऐसी वात नही है जिसे मै लौटाना चाहूँ। हाँ, साधारण नियम यहाँ भले ही दिये जा सकते है, जैसे —

(१) खाने में हमेशा सयम से काम लेना चाहिए। थोडी भूख रहते ही चौके से उठ जाना चाहिए।

(२) वहुत गरम मसालो और घी-तेल से वनी हुई साग-सब्जियो से वचना चाहिए। जव दूध पूरा मिलता हो तो चिकनाई (घी तेल आदि) अलग से खाना विलकुल अनावश्यक है। जव वीर्य-पात कम हो तो अल्प भोजन भी काफी होता है।

(३) मन और शरीर को हमेशा शुद्ध कामो मे लगाये रखना चाहिए।

(४) जल्दी सोना और जल्दी उठना वहुत जरूरी है।

(५) सवसे वडी वात तो यह है कि सयत जीवन विताने मे ही ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। जवसे इस परमतत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है, तवसे ईश्वर के ऊपर यह भरोसा वरावर वढता ही जाता है वह स्वय ही अपने इस यत्र (मनुष्य-शरीर) को विशुद्ध और चालू रक्खेगा। गीता मे कहा है—

"विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्जं रसोप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥"

यह अक्षरश सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायाम की वात करते है। आत्म-सयम मे उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह मै मानता हूँ। परन्तु मुझे खेद है कि इस विषय में मेरे निजी अनुभव कुछ ऐसे नही है, जो लिखनेलायक हो। जहाँतक मुझे मालूम है, इस विषय पर इस जमाने के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नही। यह विषय अध्ययन करने योग्य

जरूर है, मगर मैं अपने अनभिज्ञ पाठकों को यह चेतावनी जरूर दूंगा कि उन्हे जो कोई हठयोगी मिल जाये उसी को गुरु बना लेना ठीक न होगा। उन्हे यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिए कि सयत और धार्मिक जीवन मे ही अभीष्ट सयम के पालन की काफी शक्ति है।

: १३ :

मनोवृत्तियों का प्रभाव

एक सज्जन लिखते है —

"यगइडिया" में सन्तति-निग्रह पर आपने जो लेख लिखे है, उन्हे मैं बडी दिलचस्पी से पढता रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि आपने जे० ए० हैडफील्ड की 'साइकोलॉजी एण्ड मॉरल्स' नामक पुस्तक पढी होगी। उसमें के इस उद्धरण की ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ— 'विषय-भोग स्वेच्छाचार उस हालत मे कहलाता है जबकि यह प्रवृत्ति नीति की विरोधी मानी जाती हो, और विषय-भोग को निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जबकि इस प्रवृत्ति को प्रेम का चिह्न माना जाये। विषय-वासना का इस प्रकार व्यक्त होना दाम्पत्य प्रेम को वस्तुत गाढा बनाता है, न कि उसे नष्ट करता है। लेकिन एक ओर तो मनमाना सम्भोग करने से और दूसरी ओर सम्भोग के विचार को नीचे दर्जे का सुख मानने के भ्रम मे पडकर उससे परहेज करने से अक्सर अशान्ति पैदा होती है और प्रेम शिथिल पड जाता है।" यानी लेखक की समझ मे, सम्भोग से सन्तानोत्पत्ति तो होती ही है, उसके अलावा उसमे दाम्पत्य प्रेम को बढाने का धार्मिक गुण भी रहता है। अगर लेखक की

यह बात सच है, तो मुझे आश्चर्य है कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि सन्तान पैदा करने की इच्छा से किया हुआ सम्भोग ही उचित है, अन्यथा नहीं ? मेरा तो निजी खयाल यह है कि लेखक की बात बिल्कुल सच है और वह सिर्फ इसलिए नही कि वह एक प्रसिद्ध मानसशास्त्री है, बल्कि मुझे खुद ऐसे मामले मालूम हैं जिनमे शरीर-सग के द्वारा प्रेम को व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा रोकने की कोशिश करने से ही दाम्पत्य-जीवन नीरस या नष्ट होगया है। एक उदाहरण लीजिए। एक युवक और एक युवती एक-दूसरे के साथ प्रेम करते हैं। उनका ऐसा करना सुन्दर तथा ईश्वर-कृत व्यवस्था का ही एक अग है। परन्तु उनके पास अपने बच्चे की परवरिश तथा शिक्षा के लिए काफी धन नही है। मैं समझता हूँ कि आप इस बात को मजूर करते है कि ऐसी स्थिति मे सतान पैदा करना पाप है, या यो कहिए कि सन्तान पैदा करना स्त्री की तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक होगा, या यह कि उसे पहले ही बहुत-से बच्चे हो चुके हैं। अब आपके कथनानुसार, इस दम्पती के आगे दो ही रास्ते हैं, या तो वे विवाह करले और एक-दूसरे से अलग-अलग रहे, या फिर अविवाहित रहे। लेकिन पहली सूरत मे हैडफील्ड की उपर्युक्त दलील के मुताबिक उनमे बेचैनी पैदा होगी, उससे उनके बीच प्रेम-सम्बन्ध का खात्मा होजायेगा, और दूसरी सूरत मे भी प्रेम तो नही ही रहेगा, क्योकि प्रकृति ता मनुष्य-कृत योजनाओं की अवहेलना ही किया करती है। यह बेशक हो सकता है कि वे एक-दूसरे से जुदा हो जावे, लेकिन इस अलहदगी में भी उनके मन मे विकार तो उठते ही रहेगे और अगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी बदल दी जाये, जिसमे सब लोगो के लिए उतने ही बच्चो का पालन करना मुमकिन हो जितने कि वे पैदा कर सके, तो भी समाज को अति-

शय सन्तानोत्पत्ति का, हरेक औरत को हद से ज्यादा सन्तान पैदा करने का, खतरा तो बना ही रहता है। इसकी वजह यह है कि मर्द अपने को बहुत ज्यादा रोकते हुए भी साल में एक बच्चा तो पैदा कर ही लेगा। आपको या तो ब्रह्मचर्य का समर्थन करना चाहिए या सन्तति-निग्रह का, क्योंकि कभी-कभी सम्भोग करने का नतीजा यह हो सकता है (जैसा कभी-कभी पादरियों में हुआ करता है) कि पति कहेगा, 'हम क्या करें, ईश्वर की मर्जी है और स्त्री हर साल बच्चे पैदा करती-करती नि सत्त्व होकर मर जायेगी।

"जिसे आप आत्म-सयम कहते हैं वह प्रकृति के काम मे उतना ही बडा हस्तक्षेप है—बल्कि दरअसल उससे ज्यादा है—जितना कि गर्भाधान रोकने के कृत्रिम साधन हैं। सम्भव है पुरुष इन साधनों की मदद से विषय-भोग में अतिशयता करें, परन्तु उससे सन्तति की पैदाइस तो रुक जायेगी और अन्त मे इसका दु ख उन्हीं को भोगना होगा— अन्य किसी को नही। इसके विपरीत जो लोग इन साधनों का उपयोग नही करते, वे भी अतिशयता के दोष से कदापि मुक्त नही है और उनके पाप का फल केवल उन्हींको नही बल्कि उनकी सन्तति को भी, जिसकी पैदाइश को वे रोक नही सकते है, भोगना पडता है। इग्लैण्ड में आजकल खानों के मालिकों की विजय निश्चित है। इसका कारण यह है कि खानों के मजदूर बहुत बडी तादाद मे है और सन्तानोत्पत्ति की निरकुशता से बेचारे बच्चों का ही बिगाड नही होता बल्कि समस्त मानव-जाति का होता है।"

इस पत्र में मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभाव का खासा परिचय मिलता है। जब मनुष्य का दिमाग रस्सी को साँप समझ लेता है, तब उस विचार के कारण वह भय से पीला पड जाता है और या तो वहाँ से भागता है

या उस कल्पित साँप को मार डालने की गरज से लाठी उठाता है। दूसरा आदमी पर-स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता और उसके मन मे पशु-वृत्ति उत्पन्न होने लगती है। जिस क्षण वह उसे पहचानकर अपनी यह भूल जान लेता है, उसी क्षण उसका वह विकार ठण्डा पड जाता है।

यही बात उस सम्बन्ध मे भी मान ली जाये, जिसका जिक्र पत्र-लेखक ने ऊपर किया है। जैसा कि सभव है, सम्भोग की इच्छा को तुच्छ मानने के भ्रम मे पडकर उससे परहेज करने मे प्राय अशान्ति उत्पन्न हो और प्रेम मे कमी आ जाये—यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। लेकिन अगर सयम प्रेम-बन्धन को अधिक दृढ बनाने के लिए रखा जाये, प्रेम को शुद्ध बनाने के लिए तथा एक अधिक अच्छे काम के लिए वीर्य का सचय करने के अभिप्राय से किया जाये, तो वह अशान्ति के स्थान पर शान्ति ही पैदा करेगा और प्रेम-गाँठ को ढीली न करके उलटे उसे मजबूत करेगा। यह दूसरी मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। जिस प्रेम का आधार विषयेच्छा की तृप्ति है, वह आखिर स्वार्थ ही है और थोडे-से दबाव से भी ठण्डा पड सकता है। फिर जब पशु-पक्षियों की सम्भोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप नही है तब मनुष्यो मे ही होनेवाली सम्भोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप क्यो दिया जाये ? जो चीज जैसी है उसे हम वैसी ही क्यो न देखे ? यह तो वश को कायम रखने के लिए एक ऐसी क्रिया है, जिसकी ओर हम सब बरबस खिचे जाते है। लेकिन मनुष्य अपवाद-स्वरूप है क्योकि वह एक ऐसा प्राणी है जिसको ईश्वर ने मर्यादित स्वतन्त्र इच्छा दी है और इसके बल से वह अपनी जाति की उन्नति के लिए और पशुओ की अपेक्षा उत्तम आदर्श की पूर्ति के लिए, जिसके लिए कि वह ससार मे आया है, इद्रिय सयम रखने की क्षमता रखता है। सस्कारवश ही हम यह मानते है कि सन्तानोत्पत्ति के कारण के अलावा

भी स्त्री-प्रसग आवश्यक और प्रेम की वृद्धि के लिए इष्ट है। बहुतो का अनुभव यह है कि सन्तानोत्पादन की इच्छा के बिना केवल भोग के ही लिए किया हुआ स्त्री-प्रसग प्रेम को न तो बढाता है और न उसको बनाये रखने के लिए या उसको शुद्ध करने के लिए ही आवश्यक है। अलबत्ता, ऐसे भी उदाहरण दिये जा सकते है कि जिनमें इन्द्रिय-निग्रह से प्रेम और भी दृढ हो गया है। यह जरूर है कि यह आत्म-निग्रह पति और पत्नी को पारस्परिक आत्मोन्नति के लिए स्वेच्छा से करना चाहिए।

मानव-समाज तो लगातार उन्नति करती जानेवाली या आध्यात्मिक विकास करनेवाली चीज है। यदि मानव-समाज इस तरह ऊर्द्ध्वगामी है, तो उसका आधार शारीरिक इच्छाओ पर दिनोदिन अधिकाधिक अकुश रखने पर रहना चाहिए। इस प्रकार विवाह को तो एक ऐसी धर्म-ग्रन्थि समझना चाहिए जो पति और पत्नी दोनो पर अनुशासन करे और उनपर यह कैद लाजिमी करदे कि वे सदा अपने ही बीच में इन्द्रिय-भोग करेंगे, और सो भी केवल सन्तति-जनन की गरज से और उसी हालत मे जबकि वे दोनो उसके लिए तैयार और इच्छुक हो। तब तो उक्त पत्र की दोनो बातो में सन्तानोत्पत्ति की इच्छा को छोडकर इन्द्रिय-भोग का और कोई प्रश्न उठता ही नही है।

जिस प्रकार उक्त लेखक सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी स्त्री-सग को आवश्यक बतलाता है, उसी प्रकार अगर हम भी प्रारम्भ करे, तो तर्क के लिए कोई स्थान नही रह जाता है। परन्तु ससार के हरेक हिस्से मे कुछ श्रेष्ठ पुरुषो के सम्पूर्ण सयम के दृष्टान्तो की उपस्थिति मे उक्त सिद्धान्त को कोई जगह नही है। यह कहना कि ऐसा सयम अधिकाश मानव-समाज के लिए कठिन है, सयम की शक्यता और इष्टता के विरुद्ध कोई दलील नही हो सकती। सौ वर्ष पहले अधिकाश मनुष्यो के लिए

जो शक्य नही था वह आज शक्य पाया गया है । और असीम उन्नति करने के निमित्त हमारे सामने पडे हुए काल के चक्र में १०० वर्ष की बिसात ही क्या ? अगर वैज्ञानिको का अनुमान सत्य है, तो अभी कल ही तो हमको आदमी का चोला मिला था। उसकी मर्यादा को कौन जानता है, और किसमें हिम्मत है कि कोई उसकी मर्यादा को स्थिर कर सके ? निस्सन्देह हम नित्य ही भला या बुरा करने की असीम शक्ति उसमें पाते रहते है ।

अगर सयम की शक्यता और इष्टता मान ली जाये तो हमको उसे करने के लायक बनने के साधनो को ढूंढ निकालने की कोशिश करनी चाहिए। और, जैसा कि मै अपने किसी पिछले लेख मे लिख चुका हूँ, अगर हम सयम से रहना चाहते हो तो हमे अपना जीवन-क्रम बदलना ही पडेगा। लड्डू हाथ में रहे और पेट में भी चला जाये—यह कैसे हो सकता है ? अगर हम जननेन्द्रिय का सयम करना चाहते है तो हमको अन्य सभी इन्द्रियो का सयम भी करना होगा। अगर हाथ, पैर, नाक, कान, आँख इत्यादि की लगाम ढीली करदी जाये तो जननेन्द्रिय का सयम असम्भव है। अशान्ति, चिडचिडापन, हिस्टीरिया, सिडीपन आदि, जिनके लिए लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने के प्रयत्न को दोषी ठहराते है, अन्त में दरअसल अन्य इद्रियो के ही सयम के फल सिद्ध होगे। कोई भी पाप या प्राकृतिक नियमो का कोई भी उल्लघन करके कोई आदमी दड से बच नही सकता।

मै शब्दो के लिए झगडना नही चाहता । अगर आत्म-सयम भी प्रकृति के नियमो का ठीक वैसा ही उल्लघन है, जैसे कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम उपाय है, तो भले ऐसा कहा जाये। लेकिन मेरा खयाल तब भी यही बना रहेगा कि उनमे यह उल्लघन कर्त्तव्य है और इष्ट है,

क्योकि इसमे व्यक्ति की तथा समाज की उन्नति होती है और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनो का पतन होता है। सन्तति निग्रह का एक ही सच्चा रास्ता है, ब्रह्मचर्य। और स्त्री-प्रसग के बाद सन्तति-वृद्धि रोकने के कृत्रिम साधनो के प्रयोग से मनुष्य-जाति का नाश ही होगा।

यदि खानो के मालिक गलत रास्ते पर होते हुए भी विजयी होगे, तो इसलिए नही कि मज़दूरो मे सन्तति की सख्या बहुत बढ गयी है, बल्कि इसलिए कि मज़दूरो ने सयम का पाठ नही सीखा है। अगर इन लोगो के बच्चे न होते, तो न तो इन्हे तरक्की करने का उत्साह होता और न तब इनके पास वेतन-वृद्धि की माँग करने के लिए कोई कारण ही होता। क्या शराब व तमाखू पिये या जुआ खेले बिना उनका काम नही चल सकता? क्या यही कोई माकूल जवाब हो जायगा कि खानो के मालिक इन्ही दोषो मे लिप्त रहते हुए भी उनके ऊपर हावी है? अगर मज़दूर लोग पूँजीपतियो से बेहतर होने का दावा नही कर सकते तो उनको दुनिया की सहानुभूति माँगने का अधिकार ही क्या है? क्या इसीलिए कि पूजीपतियो की सख्या बढे और पूँजीवाद का हाथ मज़बूत हो? हमे यह आशा देकर प्रजातत्र को दुहाई देने को कहा जाता है, कि जब वह ससार मे स्थापित हो जायेगा तब हमें अच्छे दिन देखने को मिलेगे। इसलिए हमे लाजिम है कि हम स्वय उन्ही बुराइयो का प्रचार आप ही न करे, जिनका, इलज़ाम हम पूजीपतियो तथा सम्पत्तिवाद पर लगाया करते है।

मुझे यह बात मालूम है, और दु खपूर्वक स्वीकार करता हूँ, कि आत्म-सयम आसानी से नही किया जा सकता। लेकिन उसकी धीमी गति से हमे घबराना नही चाहिए। जल्दबाज़ी से कुछ हासिल नही होता। अधैर्य से जन-साधारण मे या मज़दूरो मे अत्यधिक सन्तानोत्पत्ति की बुराई बन्द नही हो जायेगी। मजदूरो के सेवको के सामने बडा भारी काम

पडा है। उनको सयम का वह पाठ अपने जीवन-क्रम से निकाल न देना चाहिए जो कि मानव-जाति के वडे-से-वडे शिक्षको ने अपने अमूल्य अनुभव से हमको पढाया है। जिन मौलिक सचाइयो की विरासत उन्होने हमें दी है, उनकी परीक्षा आधुनिक प्रयोगशालाओ से कही अधिक सपन्न प्रयोगशाला में की गयी थी। उनमे सब किसीने हमे आत्म-सयम की ही शिक्षा दी है।

: १४ :

मात पिता की ज़िम्मेदारी

एक शिक्षक लिखते है :—

"आपने युवको के दोपो के वारे में जो कुछ लिखा है, उसके लिए मुझे तो माता-पिता ही ज़िम्मेदार मालूम पडते है। वडी उम्र के वच्चो के माता-पिता भी सन्तानोत्पत्ति करते रहते है, इसका क्या नतीजा होता है? ऐसे विवाह को व्यभिचार का नाम दें तो क्या अनुचित होगा? एक वालक का हाल सुनिए। अपनी माता की मृत्यु के वाद, वह पिता के पास सोया करता था। लेकिन वाद में पिता ने और विवाह कर लिया, और नयी वहू के साथ किवाड भेडकर सोने लगा। इससे उस वालक को कुतूहल हुआ कि 'मेरे पिता मेरे पास क्यो नही सोते?' अथवा 'मेरी मा ज़िन्दा थी तव तो हम तीनो एक जगह सोते थे, अव नयी मा के आने पर मेरे पिता मुझे अपने पास क्यो नही सुलाते?' वालक का कुतूहल वढा, और उसने सोचा कि किवाडो की सेंघ मे से झाँककर देखूँ तो सही कि क्या वात है। और, किवाडो की सेंध मे से उसने जो कुछ देखा, उसका उसके मनपर क्या असर हुआ होगा?

"लेकिन समाज मे ऐसा हमेशा ही होता रहता है। मैंने जो उदाहरण दिया है वह भी कोई मेरे दिमाग की उपज नहीं है। यह तो १३-१४ वरस के एक लडके से जो कुछ मैंने सुना वही है। छोटी उम्र में ही जो प्रजा इस तरह आत्म-नाश के रास्ते पर चलेगी, वह स्वराज्य कैसे ले या कायम रख सकेगी ? ऐसा न हो पाये, इसका हरेक माता-पिता, शिक्षक, गृहपति और स्काउट-मण्डल के नायक ध्यान रक्खे तो कैसा ? बहुत वार छोटी उम्र मे 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ समझना मुश्किल मालूम पडता है। इसके लिए, बजाय इसके कि वहुत मे बच्चो को एकत्र करके ब्रह्मचर्य पर भाषण दिये जायें, यह कही ज्यादा उपयोगी मालूम पडता है कि हरेक बच्चे को अपने विश्वास में लेकर और सच्चे मित्र बनकर छोटी उम्र मे ही सदाचार की ओर प्रेरित किया जाये। ऐसा कोई रास्ता तो होगा न, कि जिससे बालक के मन मे कुविचारो की पैठ ही न हो ?

"अब बडी उम्रवालो के बारे मे सुनिए। जो जाति गैरबिरादरी की स्त्री के हाथ का भोजन करनेवाले का वहिष्कार करती है वह जाति पर-स्त्री-सग करनेवाले का वहिष्कार क्यो नही करती ? राजनैतिक सभा-सम्मेलन मे हरिजनो के साथ बैठ जानेवाले को जो जाति दण्ड देती है, वही व्यभिचारियो को दण्ड क्यो नहीं देती ? इसका कारण मुझे तो उनकी कमजोरी ही मालूम पडता है। मुझे ऐसा लगता है कि हरेक जाति अगर आत्म-शुद्धि करने बैठे तो उसका शरीर वहुत क्षीण हो जाये। लेकिन क्षीण शरीर मे भी बलवान आत्मा हो सकती है। पर इसका उन्हे कहाँ भान है ? बहुत-सी जातियो के मुखिया तक शराबखोरी या व्यभिचार मे फँसे होते है, इसलिए अपने ही पैरो पर कुल्हाडी लगने के डर से वे उस तरफ आँख मीचकर बस दूसरो का बहिष्कार करने के लिए कमर कसे तैयार रहते है। यह समाज कब सुधरेगा ? जिस देश को राजनैतिक

उन्नति करनी हो, वह अगर पहले सामाजिक उन्नति न करे तो उसकी राजनैतिक उन्नति आकाशकुसुमवत् ही है।'

इन शिक्षक महाशय ने जो कुछ लिखा है उसमें बहुत जोर है, यह सब मंजूर करेंगे। बच्चों के बड़े हो जाने पर उसी विवाह में अथवा स्त्री मर जावे तो दूसरा विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करने से बालकों को नुकसान ही पहुँचता है, यह बात ऐसी है जिसमें समझाने की कोई जरूरत ही नहीं है। लेकिन इतना संयम न रखा जा सके तो भी, पिता को इतना तो करना ही चाहिए कि बच्चों को अलग घर में रखे या खुद स्वयं ऐसे कमरे में रहे जहाँ से न तो बालक उनकी बातचीत सुन सके और न हाँस-खेलकर देख सके। ऐसा करने में कुछ शिष्टता तो रहेगी। बचपन तो बिल्कुल निर्दोष रहना चाहिए, लेकिन माता-पिता विलासिता के वशीभूत होकर उसे दूषित बना देते हैं। बालकों की नैतिकता और उन्हें स्वतन्त्र व स्वाश्रयी बनाने के लिए वानप्रस्थाश्रम की प्रथा बहुत उपयोगी हो सकती है।

शिक्षकों के लिए जो सूचना की गयी है वह ठीक तो है, लेकिन ५०-६० बालकों की कक्षा में शिष्यों के साथ शिक्षक का सम्बन्ध अक्षरी ज्ञान देने जितना ही होता है, वहाँ शिक्षक चाहे तो भी इतने शिष्यों के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे बना सकता है? फिर जहाँ पाँच-सात विषयों की शिक्षा देते हों वहाँ कौन शिक्षक बालकों की नैतिकता के लिए ज़िम्मेदार होगा? और फिर, ऐसे शिक्षक कितने मिलेंगे जो बालकों को नैतिकता की ओर प्रेरित करने अथवा बालकों के विश्वासपात्र बनने के अधिकारी हों? इसमें तो शिक्षा का सारा प्रश्न आ जाता है। लेकिन यहाँ हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे।

समाज तो भेड़ों के झुण्ड की तरह बिना सोचे और देखे नीचे

गिरता जा रहा है, और कोई-कोई उसे ही प्रगति मानते हैं। ऐसी भयंकर स्थिति होने पर भी हमारा व्यक्तिगत मार्ग सरल है। जो इस बात को जानते है, वे जितना हो सकता है उतना अपने हिस्से का नैतिक प्रचार करते हैं। सबसे पहले तो स्वय अपने ही अन्दर यह प्रचार किया जाता है। दूसरो के दोषो का विचार करने पर हम खुद बहुत भले मालूम पडते हैं, लेकिन जब अपने दोषो पर ध्यान दें तो खुद अपने को हम कुटिल और कामी मालूम देगे। दुनिया के काज़ी बनने की बनिस्बत खुद अपने काज़ी बनना कही फायदेमन्द होता है, और ऐसा करते हुए हमें दूसरो के लिए रास्ता मिल जाता है। 'आप भला तो जग भला' का यह भी एक अर्थ है। सन्त पुरुष को तुलसीदासजी ने पारसमणि की उपमा दी है, जो गलत नही है। हम सबको सन्त बनने का प्रयत्न करना है। यह कोई अलौकिक मनुष्य के लिए ऊपर से उतरकर आया हुआ प्रसाद नही है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। यही जीवन का रहस्य है।

: १५ :

धर्म-संकट

"मै ३० वर्ष का विवाहित पुरुष हूँ। मेरी धर्मपत्नी की भी करीब-करीब यही उम्र है। हमे पाँच सन्ताने हुई, जिनमे सौभाग्य से दो मर गयी है। शेष बच्चो के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को मै जानता हूँ। मगर अपने लिए उस ज़िम्मेदारी को पूरा करना अगर असभव नही तो बहुत मुश्किल ज़रूर पाता हूँ। आपने आत्म-सयम की सलाह दी है। मै पिछले तीन वर्षो से उसका पालन करता आ रहा हूँ। मगर मेरी सहधर्मिणी

को यह पसन्द नही है और मै बहुत-कुछ उसकी इच्छा के विरुद्ध ही ऐसा कर रहा हूँ। वह तो वही चाहती है जिसे आम लोग जिन्दगी का मजा कहते है। आप इतने ऊँचे पर बैठकर भले ही इसे पाप कह सकते है, मगर वह तो इस विषय पर आपकी दृष्टि से विचार नही करती और न उसे और अधिक बच्चे पैदा करने का ही डर है। उसे उत्तरदायित्व का वह खयाल नही है, जिसके मुझमें होने का विश्वास कर मै अपने को भाग्यवान मानता हूँ। मेरे माता-पिता मेरी बनिस्बत मेरी पत्नी का ही अधिक साथ देते है, और रोज ही घर मे झगडा होता रहता है। कामेच्छा की पूर्ति न होने से मेरी स्त्री का स्वभाव इतना चिडचिडा और क्रोधी हो गया है कि वह जरा-जरा-सी बात पर उबल पडती है। अब मेरे सामने सवाल यह है कि मै इस कठिनाई को कैसे हल करूँ ? अभी मेरे जितने बच्चे है वही मेरी बिसात से ज्यादा है। उनकी परवरिश करने लायक धन मेरे पास नही है। लेकिन पत्नी को समझा सकना बिल्कुल असभव जान पडता है। अगर उसकी कामेच्छा पूरी न की जाये तो यह भय है कि वह दुराचार का रास्ता पकड ले, या पागल हो जाये, या शायद कही आत्म-हत्या ही कर बैठे। मै आपसे कहता हूँ कि अगर इस देश का कानून मुझे इजाजत देता तो मै उसी तरह सभी अनचाहे लडको को गोली मार देता, जिस तरह कि आप लावारिस कुत्तों को मरवाना चाहेगे। गत तीन महीनो से मुझे न तो दिन-रात में दो जून खाना नसीब हुआ है, और न नाश्ता या जलपान ही मयस्सर हुआ है। मेरे सिर ऐसे काम-धधे भी पडे हुए है, कि जिनसे मै लगातार कई दिनो तक उपवास ही नही कर सकता। पत्नी मुझसे कुछ सहानुभूति नही रखती, क्योकि वह मुझे खप्ती या पागल समझती है। सतति-निग्रह के साहित्य से मै परिचित हूँ। वह साहित्य बहुत लुभावने तरीके से

लिखा गया है। और मैने आत्म-सयम पर आपकी भी किताब पढी है। इधर कुआँ उधर खाई जैसी मेरी हालत हो रही है।"

इन पत्र-लेखक को मै कई साल से जानता हूँ। यह युवक है। अपना पूरा नाम-पता भी इन्होने अपने पत्र मे दिया है। अपना नाम देते हुए वह डरते थे, इसलिए वह लिखते है कि 'यग इडिया' में चर्चा की जा सकने की आशा से इन्होने मेरे पास दो गुमनाम पत्र लिखे थे। इस तरह के गुमनाम पत्र इतने अधिक मेरे पास आते रहते है कि मै उनपर चर्चा करने मे हिचकता हूँ। उसी तरह इस पत्र पर भी चर्चा करने मे मुझे बहुत झिझक है, हालाँकि मैं जानता हूँ कि यह पत्र सच्चा है और प्रयत्नशील पुरुप का लिखा हुआ है। यह विषय ही इतना नाजुक है। मगर मैं तो दावा करता हूँ कि ऐसे मामलो का मुझे काफी अनुभव है। ऐसा दावा करते हुए, और खास-कर इसलिए कि कई ऐसे ही मामलो में मेरे तरीके से लोगो को राहत मिली है, मैं इस स्पष्ट कर्त्तव्य के पालन से मुँह नही मोड सकता।

जहाँतक अग्रेजी पढे-लिखे लोगो से सम्बन्ध है, यहाँ की स्थिति दुगुनी मुश्किल है। सामाजिक योग्यता की दृष्टि से पति-पत्नी के बीच इतना बडा अन्तर होता है कि जिसे मिटाना असम्भव है। कुछ नौज-वान यह सोचते हुए जान पडते है कि अपनी पत्नियो की पर्वा न करने मे ही हमने यह सवाल हल कर लिया है, हालाँकि उन्हें बखूबी पता है कि उनकी बिरादरी मे तलाक सभव नही है और इसलिए उनकी पत्नियाँ पुनर्विवाह नही कर सकती। दूसरे लोग--और इन्ही की सख्या बहुत ज्यादा है—अपनी पत्नियो को केवल मजा लूटने का साधन बनाते है और उन्हे अपने मानसिक जीवन मे हिस्सा नही देते। बहुत ही थोडे लोग ऐसे है जिनका अन्तःकरण जागृत हुआ है, मगर

उनकी सख्या दिनोदिन वढनी जारही है। उनके सामने भी वैसी ही नैतिक समस्या आ खडी हुई है जैसी कि इन पत्र-लेखक के सामने है।

मेरी राय मे सभोग को अगर उचित या नियमानुकूल मानना है, तो उसकी इजाज़त तभी दी जा सकती है जवकि दोनो पक्ष उसकी इच्छा करे। पति के पत्नी से या पत्नी के पति से अपनी कामेच्छा की पूर्ति जवरन कराने के अधिकार को मै नही मानता। और अगर इस मामले मे मेरी स्थिति सही है, तो पति पर ऐसा कोई नैतिक दवाव नही है जिससे वह पत्नी की इच्छा पूरी करने को वाध्य हो। मगर यों इन्कार करने से पति पर और भी भारी और ऊँचा उत्तरदायित्व आ जाता है। वह अपने आपको वहुत वडा साधक मानता हुआ अपनी पत्नी को हिक़ारत की नज़र से नही देखेगा, किन्तु नम्रतापूर्वक यह स्वीकार करेगा कि उसके लिए जो वात जरूरी नहीं है वही उसकी पत्नी के लिए परमावश्यक वस्तु है। इसलिए वह उसके साथ अत्यन्त नम्रता का व्यवहार करेगा, और अपनी पवित्रता में वह यह विश्वास रक्खेगा कि उसकी पत्नी की वासना को वह अत्यन्त ऊँचे प्रकार की शक्ति के रूप मे वदल सकेगा। इसलिए उसे अपनी पत्नी का सच्चा मित्र, नायक और वैद्य वनना होगा। पत्नी में उसे पूरा-पूरा विश्वास करना होगा, उससे कुछ भी छिपाना न होगा, और अटूट धैर्य से उसे अपनी पत्नी को इस काम का नैतिक आधार समझाना पडेगा। यह वतलाना होगा कि पति-पत्नी के वीच सचमुच मे कैसा सम्वन्ध होना चाहिए और विवाह का सच्चा अर्थ क्या है। यह काम करते हुए वह देखेगा कि पहले जो वहुत-सी वाते स्पष्ट नही थी वे अव स्पष्ट हो जायेंगी, और अगर उसका अपना सयम सच्चा होगा तो वह अपनी पत्नी को अपने और भी निकट खीच लेगा।

इस उदाहरण के बारे मे तो मुझे कहना ही पडेगा, कि केवल और अधिक सन्तानोत्पादन मे बचने की इच्छा ही पत्नी को सतुष्ट करने से इन्कार करने का काफी कारण नही है। महज बच्चो का भार उठाने के डर से पत्नी की प्रेम-याचना को अस्वीकार करना तो कायरता-सी लगती है। बेहिसाब सन्तानोत्पादन को रोकना दोनो पक्षो के अलग-अलग या साथ-साथ अपनी काम-वासना पर लगाम लगाने का अच्छा कारण है, मगर दम्पती मे से एक के अपने सगी मे एकत्र शयन का अधिकार छीन लेने का यह भरपूर कारण नही है।

और आखिर बच्चो मे इतनी घबराहट ही किसलिए हो? ईमानदार, परिश्रमी और बुद्धिमान् पुरुषो के लिए कई बच्चो का पालन करने लायक कमाई करने की काफी गुजाइश तो है ही। मै कबूल करता हूँ कि इन पत्र-लेखक जैसे आदमी के लिए, जो देश-सेवा मे अपना सारा समय लगाने की ईमानदारी से सच्ची कोशिश कर रहे है, बडे और बढते हुए परिवार का पालन करना और साथ-साथ देश की भी सेवा करनी, जिसकी भी करोडो भूखी सन्ताने है, मुश्किल है। मैने अक्सर लिखा है कि जबतक हिन्दुस्तान गुलाम है, यहाँ बच्चे पैदा करना ही भूल है। मगर यह तो नवयुवको और युवतियो के विवाह ही न करने की बडी अच्छी वजह है, एक के दूसरे को दाम्पत्य सहयोग न देने का काफी कारण नही है। हाँ, सहयोग न करना—सम्भोग न करना—भी उचित हो सकता है, बल्कि न करना ही धर्म हो जाता है, जबकि शुद्ध धर्म के नाम पर ब्रह्मचर्य-पालन की इच्छा अदम्य हो उठे। जब वह इच्छा सचमुच पैदा हो जायेगी, तब उसका बडा अच्छा प्रभाव दूसरे पर भी पडेगा। अगर मान ले कि समय पर उसका अच्छा प्रभाव न भी पडा, तो भी जीवन-सगी के पागल हो जाने या मर जाने का जोखिम

उठाकर भी ब्रह्मचर्य-पालन करना कर्त्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य के लिए भी वैसे ही वीरता पूर्ण त्याग की जरूरत है जैसे कि सत्य या देशोद्धार के लिए है। मैंने ऊपर लिखा है, उसे दृष्टि मे रखते हुए यह कहने की कोई जरूरत ही नही रह जाती कि कृत्रिम उपायो से सन्तति निग्रह करना अनैतिक है और मेरे तर्क के नीचे जीवन की जो भावना छिपी हुई है उसमे इसे जगह नही है।

: १६ :

संयम के लिए क्या आवश्यक है ?

विवाह के उम्मीदवार एक भाई लिखते हैं —

"आप लिखते है कि 'संयम के पालन मे एक-दूसरे की सहमति आवश्यक नही है।' क्या यह ज्यादती नही है ? पत्नी को भी अपने ज्ञान मे भागीदार बनाया जा सके तबतक तो इन्तजार करना चाहिए न ? हिन्दुस्तान मे जहाँ घर-घर अज्ञान भरा हुआ है, इसमें भी फिर जहाँ स्त्रियो के लिए अध्ययन के द्वार बन्द है, वहाँ यह मानकर कैसे काम चल सकता है कि सच्चा रास्ता क्या है इसे समझकर सब उसपर चलने लगेगे ? 'पति का कर्त्तव्य' लेख बार-बार पढ लेने पर भी, अभी और स्पष्टीकरण की आवश्यकता बनी हुई है। मै अभी अविवाहित हूँ, पर कुछ ही समय बाद मेरा विवाह होनेवाला है। ऐसी हालत में इस सम्बन्ध मे आपके विचार जानना जरूरी जान पडता है। इसीलिए यह पत्र लिख रहा हूँ।"

मेरा अनुभव तो यह है कि अगर दूसरे की सहानुभूति की जरूरत

हो तो सयम नही टिक सकता। सयम को तो केवल अन्तर्नाद की ही जरूरत होती है। हृदयबल के ऊपर सयम का जोर है और सयम अगर ज्ञान एव प्रेम से परिपूर्ण हो तो आस-पास के वातावरण पर उसका असर पड़े विना नही रह सकता। अन्त मे तो, विरोध करनेवाला भी अनुकूल हो जाता है। पति-पत्नी के बारे मे भी यही बात है। पत्नी तैयार न हो तबतक पति रुके और पति तैयार न हो तबतक पत्नी रुके, तब तो बहुत करके वे दोनो विषय भोग के पक्ष मे कभी मुक्त नही हो सकते। बहुत-सी मिसालो मे हम देखते है कि जहाँ सयम के लिए एक-दूसरे पर आधार रहता है वहाँ अन्त में वह भग होजाता है, और यह कमजोरी ही उसका कारण है और गहरे उतरकर हम जाँच करे तो मालूम पडेगा कि जब एक-दूसरे की सहमति की प्रतीक्षा की जाती है तब वहाँ सयम की सच्ची तैयारी या उसके लिए सच्ची लगन नही होती। इसीलिए निष्कुलानन्द ने लिखा है—'त्याग न टके रे वैराग विना।' वैराग्य को अगर राग के साथ की जरूरत हो सकती हो, तभी सयम का पालन करने की इच्छा करनेवाले को उसकी इच्छा करनेवाले की सहमति की जरूरत पड सकती है।

उपर्युक्त पत्र-लेखक के लिए तो रास्ता खुला हुआ है। वह अभी अविवाहित है, और अगर ब्रह्मचर्य-पालन करने का सचमुच ही उनका निश्चय हो तो वह विवाह करे ही क्यो? माता-पिता तथा अन्य सगे-सम्बन्धी तो अपने अनुभव से जरूर यही कहेगे कि किसी नौजवान का ब्रह्मचर्य की बात करना समुद्र-मन्थन करने के समान है। और ऐसा कह कर, धमकी देकर, क्रोध करके तथा दण्ड देकर भी वे ब्रह्मचर्य की शुभेच्छा से उसे डिगाने की कोशिश करेगे। लेकिन जो ब्रह्मचर्य के भग को ही सबसे बडा दण्ड समझता हो, और जो साम्राज्य पाने के प्रलोभन पर भी

ब्रह्मचर्य का भग करने को तैयार न हो, वह किसीकी भी धमकी के वश होकर कैसे विवाह कर सकता है ? और जिनका आग्रह ऐसा तीव्र न हो, और जिन्होने ब्रह्मचर्य आदि सयम का मोल इतना ज्यादा न आँका हो, उनके लिए मैने वह वात लिखी ही नही थी जिसे कि पत्र-लेखक ने उद्धृत किया है।

: १७ :

विकार का विच्छू

कलकत्ता का एक विद्यार्थी पूछता है —

"अपनी पत्नी के साथ शुद्ध व्यवहार रखकर, यानी ब्रह्मचर्य का पालन करके, क्या कोई अपना दाम्पत्य-जीवन सुखी वना सकता है ? अपनी अशिक्षित पत्नी को वह ब्रह्मचर्य का महत्त्व किस तरह वता सकता है ? उसे सयम-धर्म कैसे सिखा सकता है ? ऐसा करते हुए सफलता कहाँ तक मिल सकती है ? समाज के वर्त्तमान दूपित वातावरण में पत्नी को भ्रष्ट होने से कहाँ तक वचाया जा सकता है ?"

मेरा और मेरे साथियों का अनुभव तो ऐसा है कि पति-पत्नी अगर स्वेच्छा-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करे तो आत्यन्तिक सुख प्राप्त कर सकते है। उन्हे अपने सुख की वृद्धि का नित्य अनुभव होता है। अशिक्षित पत्नी को ब्रह्मचर्य का महत्त्व वताने मे कोई अडचन नही होती, या यो कह सकते है कि ब्रह्मचर्य शिक्षित-अशिक्षित का भेद नही जानता। ब्रह्म-चर्य तो केवल हृदय-वल की वात है। मै ऐसी स्त्रियो को जानता हूँ जो अशिक्षित होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन कर रही है। समाज के मोहक

वातावरण में भी जो पति ब्रह्मचर्य का पालन करे, वह अपनी पत्नी के शील की रक्षा करने में अधिक समर्थ बन जाता है। ब्रह्मचर्य का अभाव पत्नी के व्यभिचार को ढका हुआ तो रख सकता है, किन्तु उसे व्यभिचारिणी बनने से नही रोक सकता।

इसके विरुद्ध, ब्रह्मचर्य मे ऐसी शक्ति है जिसे नापा नहीं जा सकता। लेकिन बहुत से उदाहरणो से मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला स्वय विकार-मुक्त नही होता, अतएव वह अपनी पत्नी के ऊपर अपने प्रयत्न का प्रभाव नही डाल सकता। विकार बडा चतुर है, इससे अपने भाई-बन्धुओ को पहचानने मे उसे देर नही लगती। जो विकार-रहित नही हुई, जो अभी विकारो को छोडने के लिए उद्यत नहीं हुई, वह पत्नी पति के हृदय मे छिपे हुए विकार को तुरन्त पहचान लेती है और उसके ठण्डे एव निष्फल प्रयत्न पर मन-ही-मन हँसती हुई खुद निर्भय रहती है। जो ब्रह्मचर्य अविचलित है और जिसके साथ शुद्ध प्रेम भरा हुआ है वह ब्रह्मचर्य तो अपने सामने के विकार को जलाकर राख कर डालता है।

बेलूर में बडी सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ है। उनमे मैंने एक ऐसी मूर्ति देखी, जिसको बनानेवाले शिल्पकार ने काम को बिच्छू की उपमा दी है। काम-रूपी बिच्छू ने एक कामिनी को डक मारकर अपनी मार से, नग्न कर दिया है, और फिर अपने डक को टेढा करके अपनी विजय के अभिमान में कामिनी के पैरो के पास खडा हुआ उसकी तरफ देख-देखकर हँस रहा है। इस बिच्छू के ऊपर जिस पति ने विजय पाली उसकी आँखो में, उसके स्पर्श मे और उसकी बोली मे ब्रह्मचर्य की शीतलता है। वह अपने निकट रहनेवालो के विकार को तत्क्षण ठण्डा करके शान्त कर देता है।

: १८ :

काम-रोग का निवारण

विवाह के बारे में थर्स्टन नामक लेखक ने जो नयी पुस्तक लिखी है, हरेक स्त्री पुरुष को उसका ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिए। हमारे यहाँ १५ वर्ष के बालक से लेकर ५० वर्ष तक के पुरुष मे और इसी उम्र की या इससे भी छोटी बालिका से लेकर ५० वर्ष तक की स्त्री मे यह धारणा फैली हुई है कि विषय-भोग के बिना रहा ही नही जा सकता। इसलिए दोनो ही विह्वल रहते है। एक-दूसरे का विश्वास नही करते। स्त्री को देखकर पुरुष का मन हाथ से जाता रहता है, और पुरुष को देखकर स्त्री की भी वही दशा हो जाती है। इसकी वजह से कितने ही ऐसे रिवाज भी पड गये है जिनसे स्त्री-पुरुष रोगी, निर्बल, निरुत्साही देखने मे आते है और हमारी ज़िन्दगी ऐसी निकृष्ट हो गयी है जैसी मनुष्य के लिए उचित नही है।

ऐसे वातावरण में रचे हुए शास्त्र में भी इस प्रकार की आज्ञाएँ और मान्यताएँ देखने मे आती है, जिनके परिणाम-स्वरूप स्त्री-पुरुष को परस्पर ऐसा व्यवहार रखना पडता है मानो वे एक-दूसरे के दुश्मन हो, क्योंकि एक को देखकर दूसरे को विकार पैदा होता है, या होने का भय रहता है।

इस मान्यता के कारण और इसके आधार पर बने रिवाजो के कारण जीवन या तो विषय-भोग मे या उसके विचार मे चला जाता है और फिर ससकार डुबे ज़हर के समान हो जाता है।

वास्तविक रीति से तो मनुष्य मे विवेक-वुद्धि होने से उसमे पशु की अपेक्षा अधिक त्याग-शक्ति और सयम होना चाहिए। मगर हम रोज ही यह अनुभव करते है कि पशु नर-मादा की मर्यादा के विधान का जिस अश तक पालन करते है उस अश तक मनुष्य नही करता। सामान्य तौर पर स्त्री-पुरुष के वीच माता-पुत्र, वहन-भाई, या पिता-पुत्री के समान सम्बन्ध होना चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि दाम्पत्य-सवध अपवाद रूप मे ही हो सकता है। और अगर भाई को वहन से या वहन को भाई से डरना पडे तो पुरुष अन्य स्त्री से या स्त्री अन्य पुरुष से डरे। लेकिन इसके विपरीत स्थिति यह है कि भाई-वहन के वीच भी सकोच रक्खा जाता है और रखना सिखलाया जाता है।

इस दयनीय स्थिति यानी विषय वासना से दुर्गन्धित वायु-मण्डल से मुक्त होने की पूरी आवश्यकता है। किन्तु हमारे अन्दर ऐसे वहम ने जड जमाली है, कि इस वासना से उवरना असम्भव है। अत अव ऐसा दृढ विश्वास हममे उत्पन्न होना चाहिए कि इस वहम की जड ही उडा देने मे पुरुषार्थ है और यह अशक्य नही है।

ऐसा पुरुषार्थ करने मे थर्स्टन की छोटी-सी पुस्तक वहुत सहायक है। लेखक की यह शोध मुझे तो ठीक ही जान पडती है कि विषय-वासना के मूल मे आजकल की विवाह-सम्वन्धी मान्यता और उसके आधार पर रचे गये रिवाज है, जो पूर्व-पश्चिम सर्वत्र ही व्याप्त है। स्त्री-पुरुष का रात को एकान्त मे एक कमरे मे और एक ही विस्तर पर सोना दोनो के लिए घातक है और विषय-वासना को व्यापक और स्थायी करने का जवरदस्त ज़रिया है। जब सारे विवाहित लोग ऐसा व्यवहार करे तो धर्मोपदेशको और सुधारको का सयम के उपदेश करना आकाश में पेवन्द लगाने के समान है। ऐसे वातावरण मे सयम के

उपदेश निरर्थक हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? शास्त्र पुकार पुकार कर कहते हैं कि विषय-भोग केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही किया जा सकता है। इस आज्ञा का उल्लघन क्षण-क्षण मे होता है, फिर भी रोग होने पर दूसरे-दूसरे कारण ढूंढे जाते है। यह तो 'वगल मे लडका और शहर मे ढिढोरा' जैसी ही वात हुई। दिये के समान यह वात समझली जाये तो—

१ स्त्री-पुरुष आज से प्रतिज्ञा करले कि हम एकान्त में नही सोयेंगे और दोनो की सम्मिलित इच्छा विना सन्तानोत्पत्ति की चेष्टा नही करेंगे। जहाँतक सम्भव हो, दोनो को अलग-अलग कमरो मे सोना चाहिए। गरीवी के कारण जहाँ यह विल्कुल ही असम्भव हो वहाँ स्त्री-पुरुष को दूर-दूर ही और अलग-अलग विस्तरो पर वीच मे किसी मित्र या सम्वन्धी को सुलाकर सोना चाहिए।

२ समझदार माँ-वाप अपनी लडकी को ऐसे घर मे देने से साफ इन्कार करदे, जहाँ उसे अलग कमरा और अलग विस्तर न मिल सके। विवाह एक तरह की मित्रता है। वालको को एसी तालीम मिलनी चाहिए कि विवाह के द्वारा स्त्री-पुरुष एक दूसरे के सुख-दुख के साथी वनते है, किन्तु इसका मतलव यह नही कि विवाह होने के वाद पहली ही रात को विषय-भोग मे पडकर वे जिन्दगी वरवाद करने की नीव खोद ले।

थर्स्टन की शोध को कवूल करने का मतलव यह है कि उसमे जो नयी आश्चर्यकारक, कल्याणकर एव शान्ति-प्रिय कल्पना निहित हुई है उसका मनन किया जाये, और उससे इस वात को हम समझ ले कि विवाह के सम्वन्ध मे इस समय जो विचार प्रचलित है उनमे रद्दोवदल करने की जरूरत है। ऐसा होने पर ही इस शोध का लाभ मिलेगा।

यह शोध जो हजम कर चुके हो, वे अगर बाल-बच्चेवाले हो तो अपने बच्चो की तालीम और घर का वातावरण बदले।

इस शोध के बाद यह समझने के लिए हमे थर्स्टन के साक्ष्य या उसके समर्थन की जरूरत ही नही होनी चाहिए कि विषय-भोग करते हुए भी उसके फलस्वरूप होनेवाली सन्तानोत्पत्ति को रोकने के लिए कृत्रिम उपायो का आजकल जो भयकर प्रचार हो रहा है वह हानिकारक है। यही आश्चर्य की बात है कि ये उपाय हिन्दुस्तान मे चल कैसे सकते है ! शिक्षित लोग हिन्दुस्तान के निर्बल वातावरण मे किस तरह ऐसे उपायो की सलाह देते है, यह बात मेरी तो बुद्धि मे ही नही आती।

: १६ :

काम को कैसे जीतें ?

काम-विकार पर विजय पाने का प्रयत्न करनेवाले एक भाई लिखते है —

"आपकी 'आत्म-कथा' के पहले खण्ड को पढकर बहुत-कुछ अनुभव हुआ है। आपने कोई भी बात छिपाकर नही रक्खी है, इसलिए मै भी आपके आगे कोई बात छिपाकर नही रखना चाहता। 'अनीति की राह पर' पुस्तक भी पढी, जिससे मालूम हुआ कि विषय-वृत्ति पर विजय पाने की खासतौर पर क्यो जरूरत है। लेकिन विषय वासना इतनी खराब है कि योग-वासिष्ठ तथा स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थो को पढते वक्त तो सब कुछ सारहीन मालूम

पढता है, किन्तु उनको पढना बन्द किया नहीं कि फौरन हमें विषय-वासनाएँ आ घेरती है। आँख, नाक, कान, जिह्वा को तो काबू में किया जासकता है, क्योंकि आँख बन्द की नहीं कि आँख से देखने का विषय बन्द हो जाता है, और इसी तरह अन्य इन्द्रियो का हाल है, लेकिन जननेन्द्रिय का रास्ता तो जुदा ही मालूम पडता है। जब उसमें बेचैनी होती है, तब ऐसा हो जाता है मानों हमने जो कुछ पढा वह सब व्यर्थ है। मैं अपना आहार सात्त्विक रखता हूँ, एक वक्त खाना खाता हूँ, रात को सिर्फ दूध पर ही रहता हूँ, फिर भी काम-विकार किसी भी तरह पीछा नहीं छोडता। यह समझ में नहीं आता, कि ऐसा क्यो होता है? गीता में भी एक जगह भगवान श्रीकृष्ण ने यही कहा है, कि आहार न करनेवाला मनुष्य इन्द्रियो के विषयों से तो मुक्त हो जाता है परन्तु उन विषयो की आसक्ति से मुक्त नहीं होता। वह आसक्ति तो परमात्मा के दर्शन से ही मिट सकती है।'

"इस तरह ईश्वर के दर्शन होने पर ही विषयासक्ति से मुक्त हुआ जा सकता है। अर्थात्, न तो ईश्वर-दर्शन हो और न विषय-वासना से मुक्ति मिले। मैं इसी पसोपेश में पड़ा हुआ हूँ। ऐसी हालत में क्या किया जाये? क्या आप मेरे-जैसे विषय-वासना में फँस जानेवाले को उससे छूटने का कोई रास्ता नहीं बतायेगे?

"बहुत समय से मैं आपसे यह पूछने की कोशिश कर रहा था, लेकिन झिझकता था। मगर जब आपकी 'आत्म-कथा' पढी तो मुझे लगा कि मेरा यह बात पूछना अनुचित न होगा, साथ ही यह भी महसूस हुआ, कि ईश्वरी मार्ग में जो कठिनाइयाँ मालूम दे उनके बारे में पूछने में कोई सकोच नही होना चाहिए।"

इन भाई की जो हालत है वही और भी बहुतो की है। काम

पर विजय पाना मुश्किल जरूर है, किन्तु असभव नही। और ईश्वर का कुछ ऐसा नियम है, कि जो काम को जीत लेता है वह ससार पर भी विजय पाकर मुक्त हो जाता है। इससे हम जान सकते है कि काम पर विजय पाना सबसे कठिन है। इसके लिए धीरज की बहुत जरूरत है, यह काम पर विजय पाने का प्रयत्न करनेवाले सब लोग स्वीकार नही करते। लेकिन अक्षरी ज्ञान के अभ्यास में हमें लगन, धीरज और ध्यान की कितनी जरूरत पडती है, यह हम सब जानते है। इससे अगर त्रैराशिक का हिसाब लगाये तो हमे मालूम होगा कि अक्षरी ज्ञान के अभ्यास मे धीरज आदि की जितनी जरूरत होती है उसकी बनिस्वत असख्यगुना धीरज काम पर विजय पाने के लिए चाहिए।

यह तो हुई धीरज की बात। लेकिन काम पर विजय पाने मे हम उपचार के बारे मे भी इतने ही उदासीन रहते है। मामूली बीमारी को मिटाने के लिए तो दुनियाभर की दौड-धूप करते है, डाक्टरो के घर छान डालते है, और जन्तर-मन्तर को भी नही छोडते, लेकिन कामरूपी महाव्याधि को दूर करने के लिए हम यह सब नही करते, थोडी-बहुत कोशिश के बाद ही थककर बैठ जाते है, और उल्टे ईश्वर तथा उपचार बतानेवाले के साथ शर्त करने लगते है कि यह कुपथ्य तो नही छोड सकते फिर भी आप हमारे काम-विकारो को दूर करदे। इसीका यह नतीजा है कि काम-विकार को दूर करने के लिए हमारे अन्दर सच्ची लगन नही है। उसके लिए हम अपने सर्वस्व की बाज़ी लगाने को तैयार नही है। विजय-प्राप्ति के मार्ग मे शिथिलता सबसे बडी रुकावट है। यह सच है कि निराहार रहने से विकार दबते है, लेकिन आत्मदर्शन बगैर उनकी आसक्ति नही जाती। मगर इस (गीता के)

श्लोक का मतलब यह नहीं कि काम पर विजय पाने के लिए निराहार व्यर्थ है। इसका मतलब तो यह है कि निराहार रहते हुए कभी थको ही नहीं। ऐसी दृढ़ता और लगन से ही आत्मदर्शन हो सकता है। ऐसा होनेपर आसक्ति भी न रहेगी। लेकिन ऐसा अनशन दूसरे के कहने से या दिखाने के लिए नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो मन, वचन और शरीर का सहयोग होना चाहिए। यह सब हो, तो अन्त में विकार-शान्ति अवश्य होगी।

लेकिन निराहार से पहले और भी बहुत से उपाय करने चाहिएँ। उनसे विकार शान्त न हों तो कम तो जरूर हो जायेंगे। भोग-विलास के प्रसंग-मात्र का परित्याग कर देना चाहिए। उसके प्रति उदासीनता की वृत्ति पैदा करनी चाहिए। क्योंकि उसके प्रति उदासीन हुए बगैर किया हुआ उसका त्याग केवल बाहरी त्याग होगा, उससे वह दबेगा नहीं। यह बताने की तो कोई जरूरत नहीं कि किस-किस बात का भोग-विलास कहें। जिस भी किसी चीज से विकार उत्पन्न हो उसीको छोड़ देना चाहिए।

आहार का प्रश्न ऐसा है जिसका इस सम्बन्ध में बहुत खयाल रखने की जरूरत है। मेरी मान्यता तो यह है कि जो लोग विकारों को दबाना चाहते हैं उन्हें घी-दूध का इस्तैमाल कम करना चाहिए। अपनेआप पका हुआ कच्चा अनाज खाकर रहा जा सके तो कृत्रिम अग्नि का जिससे स्पर्श हुआ है ऐसा—अर्थात् आग पर रांधा हुआ—खाना न खायें, या कम खायें। फल और अधिकांश सब्जियों को कच्चा ही खाया जा सकता है और खाना ही चाहिए। यह जरूर है कि कच्ची सब्जी का परिमाण बहुत कम रखा जाये, दो-तीन तोला कच्ची सब्जी ही पोषण के लिए काफी है। मिठाई और मिर्च-मसालों को बिलकुल छोड़ देना

चाहिए। यह सब सुझाने पर भी, मैं यह नहीं कह सकता कि इससे ब्रह्मचर्य की पूरी तरह रक्षा हो सकती है। मैं जानता हूँ कि आहार से ही ऐसा नहीं हो सकता, लेकिन विकारोत्तेजक खाना खाते हुए तो मनुष्य को ब्रह्मचर्य-पालन की कोई आशा ही नहीं रखनी चाहिए।

परिशिष्ट

(१) जनन और प्रजनन

(२) सब रोगों का मूल

(३) जितेन्द्रियता और कामुकता

: १ :

जनन और प्रजनन

['ओपन कोर्ट' नामक एक अंग्रेजी मासिक में लिखे श्री विलियम लोफ्ट्स हेयर के एक लेख का अनुवाद]

प्राणि-शास्त्र मे जनन

एककोषीय जीवो की खुर्दबीन से जाँच करने पर पता चला है कि अग्रतम जीवो में वंश-वृद्धि के लिए शरीरो के टुकडे अपने-आप हो जाते है। पोषण पाने से ऐसे जीव के शरीर की वृद्धि हो जाती है और जब वह अपनी जाति के लिहाज से बडा-से-बडा हो जाता है तब उसके दो विभाग होने लगते है और धीरे-धीरे शरीर के ही दो टुकडे हो जाते है। साधारण सुविधाएँ यानी पानी और पोषण मिलते जाने पर, मालूम होता है, इन्ही क्रियाओ मे उसका सारा जीवन समाप्त होजाता है, लेकिन ये सुविधाएँ न मिलने पर कभी-कभी दो कोषो का एक मे मिलकर पुनर्यौवन होते हुए भी देखा जाता है, हालाँकि उनके मिलने से सन्तानोत्पत्ति नही होती।

बहुकोषीय जीवो मे भी पोषण और वृद्धि की क्रियाएँ नीचे के जीवो के समान ही चलती है, परन्तु उनमे एक और नयी क्रिया देखने मे आती है। शरीर के अलग-अलग कोष-पुजो के प्राय अलग-अलग काम होते है। कुछ पोषण प्राप्त करते है तो कुछ उसे बाँटने का काम करते है, कुछ गति के लिए है तो कुछ हिफाजत के लिए, जैसे कि चमडा। जिन्हे कुछ नये काम मिलते है वे कोष-पुज शरीर-विभाजन की प्राथमिक

क्रिया छोड देते है, मगर कुछ कोषपुजो के ज़िम्मे, जिन्हे शरीर मे कुछ और भीतरी जगह मिलती है, वह काम बचा रहता है। दूसरे पुज, जिनमे अदल-बदल हो चुकी है, इनकी हिफाजत और खिदमत करते है मगर ये जैसे-के-तैसे ही बने रहते है। इनमें विभाजन पहले जैसा ही होता है, मगर बहुकोषीय शरीर के भीतर ही, और आगे जाकर कुछ तो बाहर ही निकाल दिये जाते है। तथापि उन्हे एक नयी शक्ति मिल जाती है। अपने पूर्वजो के समान दो टुकडे हो जाने के बदले, उनके पुजो का विभाजन या वृद्धि अलग-अलग टुकडे हुए बिना ही होती है। यह क्रिया तबतक चलती रहती है जबतक कि वह प्राणी अपनी जाति के लिहाज़ मे पूर्ण वृद्धि को नही पहुँच जाता। मगर उसके शरीर मे हम एक बात नयी देख पाते है। वह यह कि मौलिक कीटाणुओ का काम केवल बाह्य जनन का ही नही रह जाता बल्कि आन्तरिक कोषो की उत्पत्ति के लिए भी वे, जहाँ कही जरूरत पडती है, कोष दिया करते है। इस प्रकार ये, किसी खास काम के लिए पहले ही से निश्चित न किये गये कोष, एक साथ ही दो काम करते है—यानी, आन्तरिक प्रजनन या शरीर का विकास और बाह्य जनन या वश-वृद्धि का काम। यहाँ हम प्रजनन और जनन इन दो क्रियाओ का अन्तर स्पष्ट समझ ले। एक और महत्वपूर्ण बात है। प्रजनन—आन्तरिक विकास—व्यक्ति के लिए परमावश्यक है, और इसलिए आवश्यक और पहला काम है, जनन या वश विस्तार का काम तो कोषो की अधिकता होने पर ही होगा, और इसलिए दूसरा और कम महत्व का है। शायद दोनो ही पोषण पर निर्भर रहते है। क्योकि अगर पोषण पूरा न मिले तो आन्तरिक विकास का काम ठीक न हो सकेगा और न कोषो की कसरत होगी, न वश-विस्तार ही होने की आवश्यकता या सम्भावना होगी। इसलिए

जीवन का नियम यह है कि इस स्थिति मे पहले प्रजनन के लिए जीव-कोषो का पोषण किया जावे और तब कही जनन के लिए। अगर पोषण पूरा न हो सके तो उसपर पहला हक होगा प्रजनन का और जनन की क्रिया बन्द रखनी होगी। यो हम सन्तानोत्पत्ति की रोक के मूल का पता पा सकते है और इसीको पिछली स्थितियो, ब्रह्मचर्य और वैराग्य, तक प्राय जा सकते है। आन्तरिक प्रजनन की क्रिया कभी रुक नही सकती, वह तो मरने पर ही रुकती है और इस प्रकार मौत की जड को भी हम देख पाते है।

प्राणि-शास्त्र में प्रजनन

मनुष्यो और पशुओ में लिग-भेद अपनी चरमसीमा तक पहुँच गया है और सामान्य नियम बन गया है। इन जीवो का विचार करने के पहले हमें बीच की स्थिति को देखना पडेगा, यानी वह जो अलिगिक स्थिति (एककोषीय जीव) के बाद और द्विलिंगिक स्थिति के पहले की है। इसे उभयलिंगी का नाम दिया गया है, क्योंकि इसमे नर और मादा दोनो के गुण मौजूद होते है। अब भी कुछ ऐसे जीव है, जिनमें यह स्थिति देखने में आती है। उनमें आन्तरिक कोषो की वृद्धि तो उसी तरह होती जाती है, मगर कुछ कोष शरीर से बिल्कुल निकल जाने के बदले एक अग से दूसरे अग में चले जाते है और वही उनका पोषण तबतक होता रहता है जबतक कि वे अपने बल पर जिन्दा रहने के योग्य नही हो जाते।

विकास का नियम यह मालूम पडता है कि चाहे एक-कोषीय जीव हो या बहु-कोषीय या उभय-लिंगी, सभी दशाओं में सन्तान का विकास वहाँ तक होते जाना सभव है। जहाँतक कि उसके माता-पिता का उसके

पैदा होने के समय तक हो चुका था। इस तरह यह तो व्यक्ति की ही उन्नति हुई। जब कभी उसे सन्तान होती है वह व्यक्ति ही पहले से उच्चतर स्थिति में पहुँचता है या पहुँच सकता है। फलत उसकी सन्तान अपने माता-पिता के साधारण विकास को प्राप्त हो सकेगी। हर जाति और व्यक्ति के लिए जनन-शक्ति की अवधि अलग-अलग होगी, मगर आदर्श-रूप मे तो वह यौवनावस्था से लेकर वृद्धावस्था के प्रारम्भ तक होती है। समय से पहले या वृद्धावस्था मे सन्तानोत्पत्ति होने से, सन्तान मे माता-पिता की निर्बलता उतर जायेगी। यहाँ, तब, हम शारीरिक नियमो के अनुसार सम्भोग-नीति का एक नियम देख पाते है। वश विस्तार और शरीर के आतरिक प्रजनन के लिहाज से सन्तानोत्पत्ति के लिए सबसे अधिक फायदेमन्द समय केवल पूर्ण यौवन ही है।

यहाँ एक बात ध्यान देने लायक है। उभय-लैंगिक सृष्टि के साथ-साथ एक नयी बात देखने मे आती है। वह यह है कि दोनो लिगो के उसके अग सिर्फ अलग-ही-अलग नही रहते बल्कि स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने शुक्रकोष बनाते जाते है। नर-अग तो पुराना आन्तरिक जनन का काम शुक्र-कोषो को बना-बनाकर (जिन्हे बाहर निकालकर मादा-पिंड मे प्रवेश कराने के कारण वीर्यकीट कहते है) करता ही जाता है, इसी तरह मादा-अग भी करता है, मगर अपने रज को निकालने के बजाय पुरुष-अग के जीवकोष गर्भाधान के लिए रक्षित रखता है। हर हालत मे, व्यक्ति के लिए, आन्तरिक प्रजनन प्राथमिक कार्य है और परमावश्यक है। गर्भाधान के बाद मे हर क्षण जीव का आन्तरिक प्रजनन होता रहता है। मनुष्य-जाति मे यौवनावस्था मे सन्तानोत्पत्ति हो सकती है, मगर सिर्फ जाति के लिए, उससे व्यक्ति को लाभ पहुँचना जरूरी नही है। नीची श्रेणियो के समान यहाँ भी अगर आन्तरिक प्रजनन की क्रिया रुक

जाये, या ठीक-ठीक न चले, तो बीमारी या मौत आयेगी। यहाँ भी जाति और व्यक्ति के हितो मे चढा-ऊपरी है। अगर कोष उबरते न हो तो बाह्य-जनन मे कोष खर्च करने से आन्तरिक प्रजनन के काम मे बाधा पडेगी ही। हकीकत तो यह है कि सभ्य मनुष्यो मे सन्तानोत्पत्ति की जरूरत से कही अधिक सम्भोग हुआ करता है, और वह भी आन्तरिक प्रजनन के मत्थे, जिसके कारण रोग, मृत्यु और दूसरे कष्ट मेहमान बनते है।

मनुष्य-शरीर का कुछ और गौर से हम विचार करे। उदाहरण के लिए हम पुरुष-शरीर को लेगे, यद्यपि जरूरी हेर-फेर के साथ स्त्री-शरीर मे भी वे ही क्रियाएँ दिखलाई पडती है।

शुक्र-कोषो का केन्द्रीय खजाना ही जीव का सबसे पुराना और मौलिक स्थान है। शुरु मे ही गर्भस्थ जीव-कोषो की बढती से, जिनका माता के शरीर से पोषण होता है, वह हर घडी बढता रहता है। यहाँ भी जीवन का नियम है, 'शुक्र कोषो का पोषण करो।' जब वे बढते है और उनका वर्गीकरण होता है, तब वे जरूरत के मुताबिक स्थायी या अस्थायी नये रूप या नये काम लेते है। जन्म की घडी से इसमे कोई खास फर्क नही पडता। पहले शुक्र-कोषो को जो पोषण नाभि नाल से मिलता था वह अब मुँह के रास्ते मिलने लगता है। वे तादाद मे जल्दी-जल्दी बढने लगते है, और जहाँ कही पुराने अगो को दुरुस्त करने की जरूरत पडी, और जरूरत तो हमेशा बनी ही रहती है, वहाँ ये इस्तैमाल किये जाते है। नाडियो के जरिये ये अपने स्थान मे लेकर सारे शरीर मे फैलाये जाते है। बडे-बडे समूहो मे वे खास काम ले लेते है और शरीर के भिन्न-भिन्न अगो की मरम्मत करते है। वे हजारो बार मौत को गले लगाते है, जिसमे उनका कोष-समाज जीता रहे। मुर्दे कोष शरीर की तह पर आ जाते है, और

खासकर हाड़ो, दाँतो, चमड़े और बालो को मजबूत बनाने के काम आते है, जिसमे शरीर की ताकत बढ़े और ठीक हिफाजत हो। व्यक्ति के उच्च जीवन और उसपर निर्भर सभी बातो की कीमत इनकी मौत से चुकायी जाती है। अगर वे पोषण न ले, दूसरे कोषो को पैदा न करे, अलग-अलग न हो जायें, भिन्न-भिन्न वर्गो में न बँटें, और अन्त में मरे नही तो शरीर टिक नही सकता।

शुक्र से या वीर्य से दो तरह के जीवन मिलते है—(१) आन्तरिक या प्रजनन का, (२) बाह्य या जनन का, वश-विस्तारवाला। जैसा कि हम कह चुके है, शरीर के जीवन का आधार आन्तरिक प्रजनन है और इसको तथा बाहरी जनन को एक ही आधार पर निर्भर रहना पडता है। इसलिए यह सहज ही देखा जा सकता है कि खास-खास हालतो मे ये दोनो क्रियाएँ सम्भवत परस्पर-विरोधी हो सकती है, परस्पर शत्रुता रख सकती है।

प्रजनन और अचेतन

प्रजनन की क्रिया कुछ यन्त्र के काम की-सी नही है। प्रारम्भिक काल मे कोषो के विभाजन से प्रजनन का जैसा सजीव कार्य होता था वैसा ही सजीव अब भी होता है—अर्थात्, वह बुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है। यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम बिल्कुल निर्जीव कल की भाँति है। यह जरूर सच है कि मूलभूत बातें हमारी वर्त्तमान जागृति से इतनी दूर जा पडी है कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के आधीन नही मालूम होती, परन्तु एक क्षण के बाद ही हमे मालूम पड जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीरवाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओ का नियत्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है—और उसका

काम ही यही है—उसी प्रकार शरीर के क्रमश होते हुए सगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनोवैज्ञानिको ने उसका नाम अचेतन रक्खा है। वह हमारे नित्य-नैमित्तिक विचारो से दूर होते हुए भी हमारा ही अग-विशेष है। यह अपने कार्य मे इतना जागरूक और सावधान रहता है कि हमारा चैतन्य कभी-कभी सुप्तावस्था मे पड जाता है, यद्यपि वह सोता एक क्षण के लिए भी नहीं। हमारे अचेतन और अविनश्वर अश की जो प्राय अपूर्व हानि शरीर सुख के लिए किये गये विषय-भोग मे होती है, उसका अन्दाजा कौन लगा सकता है ? प्रजनन का परिणाम मृत्यु है। विषय-सम्भोग पुरुष के लिए प्राण-घातक है और प्रसूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही है।

तव अचेतन ही वह जीव-शक्ति है, जो प्रजनन की कठिन क्रियाओ का सचालन करती है। इसका पहला काम है, गर्भ-स्थित जीव-पिण्ड को अन्य दूसरे कोषो से अलग करना। इसके बाद से जीव-पिण्ड को वह मौत तक, मूल शुक्र-कोषो को अपनेमे लेकर और उनको अपने-अपने अगो मे भेजकर, जिलाये रखता है। यहाँ कई नामी मानसशास्त्रियो से मै विरुद्ध जाता मालूम होऊँगा। मगर मेरी समझ में अचेतन का सम्बन्ध सिर्फ व्यक्ति से रहता है, न कि जाति से, इसलिए, उसका पहला काम है प्रजनन। सिर्फ एक तरह से कहा जा सकता है कि अचेतन का सम्बन्ध जाति से होता है—जहाँतक कि अचेतन व्यक्ति की उन्नति कर सका है, उसे जैसा वना सका है, वैसा ही वनाये रखना चाहता है। मगर वह असम्भव को तो सम्भव नही कर सकता। चेतन की सहायता से भी शरीरधारी का जीवन हमेशा के लिए वह वनाये नही रख सकता। इसलिए सम्भोग की प्रवृत्ति या चाह के जरिये वह अपने आपको पैदा करना चाहता है। यहाँ पर चेतन और

अचेतन मिल गये-से कहे जा सकते है। सम्भोग से जो मामूली तौर पर आनन्द मिलता है, उसे व्यक्ति के सुख के अलावा किसी दूसरे हेतु की पूर्ति कहा जा सकता है। लेकिन व्यक्ति नही जानता कि इस उद्देश्य की पूर्ति की उसे कितनी अधिक कीमत देनी पडती है।

जनन और मृत्यु

इस लेख को वैज्ञानिक विशेषज्ञो के उद्धरणो से भर देना तो ठीक नही है मगर विषय के महत्त्व और सर्वसाधारण में फैले हुए इस सम्बन्धी भारी अज्ञान के कारण कुछ प्रामाणिक उद्धरण देने ही पडेगे। एककोषी जीवो के सम्बन्ध मे श्री रे लैकेस्टर लिखते है —

"इनमे शरीर के टुकडे हो जाने से वंश-विस्तार होता जाता है और इस प्रकार के जीवो में स्वाभाविक मौत को कोई जगह ही नही है।"

श्री वीसमैन लिखते है—"स्वाभाविक मृत्यु तो सिर्फ बहुकोषीय जीवो मे ही होती है। एककोषीय जीव उससे बच जाते है। उनके विकास का कभी अन्त नही होता, कि जिसकी तुलना हम मृत्यु से कर सके, और नयी देह बनने के लिए पुरानी का नाश होना भी जरूरी नही है। विभाजन मे दोनो ही समान वय के है, न कोई बूढा है, न जवान। इस प्रकार एक-एक जीव की अनन्त श्रेणी चलती है, जिनमे हरेक उतना ही पुराना होता है जितनी कि जाति, और हरेक में अनन्त काल तक जीते रहने की शक्ति होती है—उसके टुकडे होते है, मगर वह कभी मरता नही है।"

श्री पैट्रिक गेड्स लिखते है—"यो हम कह सकते है कि नये शरीर की कीमत मौत है। नया शरीर पाने की कीमत कभी-न-कभी मौत के रूप मे देनी ही पडती है। कार्य-भेद से जिनमें स्वरूप का भेद

है ऐसे कोषो के पुज को शरीर कहते है। ऐसे शरीर का नाश अवश्यम्भावी है।" श्री वीसमैन के शब्दो में, "इस प्रकार शरीर तो कुछ हदतक जीवन के सच्चे आधार—शुक्रकोषो—को ढोनेवाला वाहकभर मालूम पडता है।"

श्री रे लैंकेस्टर का भी यही विचार जान पडता है—"बहुकोषीय जीवो मे शरीर के और अगो मे कुछ कोष अलग हो जाते है •
ऊँची श्रेणी के जीवधारियो के शरीर, जो मरणशील होते है और जिनका काम अपनेसे अधिक महत्वपूर्ण और अमर सयोग-कलो या शुक्र-कीटो को सिर्फ कुछ दिनो के लिए ढोते रहनाभर है, इस दृष्टि से नितान्त अनावश्यक और क्षणिक माने जा सकते है।"

मगर हमारे सामने सबसे अधिक आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण बात तो है, ऊँची श्रेणी के जीवो मे सन्तानोत्पत्ति और मृत्यु मे घनिष्ट सम्बन्ध का होना। इस विषय पर कितने ही वैज्ञानिक खूब स्पष्टता से लिखते भी है। प्रजनन का बदला मृत्यु है। कई जाति के जीवो मे यह बात बिल्कुल स्पष्ट है, जिनमे कि वश-वृद्धि में ही माता या पिता को प्राय जान से हाथ धोना पडता है। सन्तानोत्पत्ति के बाद भी जीना तो जिन्दगी की विजय है, जो हमेशा नही होती और किसी-किसी जाति मे तो कभी नही। मृत्यु पर लिखे अपने लेख मे महाकवि गेटे ने यह बात अच्छी तरह बतायी है कि प्रजनन और मृत्यु का सम्बन्ध बहुत घनिष्ट है, और दोनो को ही मौत को बुलानेवाली क्रियाएँ कह सकते है। श्री पैट्रिक गेड्स इस विषय पर लिखते है—"प्रजनन और मृत्यु का सम्बन्ध निश्चय ही बहुत गाढा है, मगर आमतौर पर इसे गलत तरीके से कहा जाता है। लोग कहते है कि जीवो को मर जाना है, इसलिए उन्हे बच्चे पैदा करने ही होगे, नही तो जाति का अन्त

हो जायेगा। मगर आगे की बातो पर इतना जोर देने का खयाल तो प्राय हमेशा बाद मे ही आता है। सच्ची बात तो यह है कि बच्चे इसलिए पैदा नही किये जाते, बल्कि जीव इसलिए मरते है क्योकि वे बच्चे पैदा करते है।'

सक्षेप मे श्री गेटे का कहना है—"मौत होगी ही, इसलिए बच्चे पैदा करना जरूरी नही है, बल्कि सन्तानोत्पादन का अवश्यम्भावी फल ही मृत्यु है।"

कितने ही उदाहरण देने के बाद श्री गेड्स इन महत्वपूर्ण शब्दो मे अपना लेख समाप्त करते है—"ऊँची श्रेणी के जीवो मे वशोत्पत्ति के लिए होनेवाला बलिदान बहुत कम होगया है, मगर तो भी मनुष्यो मे कामोपभोग के फलस्वरूप प्राणान्त हो सकता है। यह तो सभी कोई जानते है कि सयत भोग-विलास से भी शरीर कुछ दिनो बाद खाली हो जाता है और शारीरिक शक्तियो के घटने पर सभी बीमारियो का होना ज्यादा सम्भव होता है।"

थोडे मे इस चर्चा का साराश देकर इसे यो खत्म किया जा सकता है कि मनुष्यो में पुरुष सम्भोग से मौत के नजदीक पहुँचता है, और स्त्री बच्चे पैदा करने व उन्हे पालने-पोसने मे।

ऐयाशी से शरीर पर पडनेवाले प्रभावो पर पूरा एक अध्याय ही लिखा जा सकता है। अखण्ड या प्राय पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करनेवालो के लिए सबलता, पूर्णायु, जीवनी-शक्ति, रोगो से रक्षा तो स्वाभाविक बात होती है। इसका एक सबूत यह है कि निर्बल मनुष्यो के बहुत-से रोग कृत्रिम रूप से इजेक्शन द्वारा जय शुक्र को खून मे पहुँचाने से अच्छे हो जाते है।

लेख के इस भाग मे दिये गये निष्कर्षो को स्वीकार करने मे पाठको

को हितकर हो सकती है। इसपर कई आदमी तुरन्त अनेक ऐसे बड़े-बूढ़ों के उदाहरण देंगे जिनके बहुत-से बाल-बच्चे हैं और फिर भी वे देखने में अबतक स्वस्थ और सबल हैं। साथ ही आँकड़े देकर वे यह भी बतायेंगे कि अविवाहितों से विवाहित ही अधिक दिन जीते हैं। मगर इस हकीकत के सामने इन दलीलों की कोई वकत नहीं है, कि विज्ञान की दृष्टि से मौत सिर्फ जीवन के अन्त का ही नाम नहीं है, बल्कि एक ऐसी क्रिया है जो जन्म से ही शुरू होकर जीवन-रूपी क्रिया के साथ-साथ आजीवन क्षण-क्षण चालू रहती है। शरीर की मरम्मत करनेवाली जीवनी-शक्ति और शरीर को क्षीण करनेवाली विनाश-शक्ति दोनों ही जीवन-मरण की एकत्र रहनेवाली विभूतियाँ हैं। बचपन और नयी जवानी में पहली शक्ति यानी जीवन-क्रिया बढ़ती पर रहती है, प्रौढ़ावस्था में दोनों क्रियाएँ साथ-साथ बराबरी से चलती रहती हैं, और जीवन के पिछले हिस्से यानी बुढ़ापे में दिनोंदिन मौत की क्रिया ही बढ़ती जाती है और अन्त में प्राणान्त के साथ बाजी मार ले जाती है। मौत की इस जीत की घड़ी को जो कोई क्रिया जरा भी निकट लाये, वह मौत की क्रिया का ही एक अंग गिनी जायेगी। और विषय-भोग ऐसी ही क्रिया है—खासकर जबकि वह बहुत अधिक किया जाये।

मैं केवल इसी बात पर जोर देना चाहता हूँ कि मौत कोई खास घटना नहीं है, बल्कि निरन्तर चालू क्रिया की परिणति उसका अन्तिम परिणाम है। जिन्हें अब भी इसमें सन्देह हो वे चार्ल्स माइनट की (The Problem of age, Growth and Death by Charlés S. Minot) और डा० केनथ गुठरी की (Regeneration, the Gate of Heaven, by Dr. Kenneth Sylvan Guthrie) पुस्तकें पढ़ें।

मानस

जनन और प्रजनन की विरोधी शक्तियाँ शरीर को टिकाये रहती है, इसका पता शरीर के उच्च अगो, जैसे, खासकर मानस (मस्तिष्क और ज्ञान-तन्तु-जाल) के कामो का विचार करने से चलता है। दोनो स्नायु-मडल—ज्ञान-तन्तु-जाल तथा आज्ञावाहक—दूसरे सभी अगो के समान जीवन के मूल-स्थान से लिये गये किसी समय के मूल-कोषो से बने है। सारे शरीर मे उनकी बेरोक धारा बहती रहती है और खासकर दिमाग मे तो बहुत बडी मात्रा मे। इसलिए सन्तानोत्पादन के लिए या मजे के लिए ही उन कोषो की इस ऊर्ध्वगति को रोकने से उन अगो के जीवन का खजाना चुकने लगता है और धीरे-धीरे उनकी हानि ही होती है। इन्ही शारीरिक हकीकतो के आधार पर व्यक्तिगत सम्भोग-नीति बनती है, जिसमे अगर अखण्ड ब्रह्मचर्य नही तो सयम की सलाह तो दी ही जाती है।

इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण लीजिए। हिन्दू-धर्म और सामाजिक जीवन से जो लोग कुछ भी परिचित है वे जानते है कि हिन्दू लोग पहले तपस्या किया करते थे, और कुछ लोग अब भी करते है। इसके दो उद्देश्य होते है। एक तो शरीर को कायम रखना और उसकी शक्ति बढाना, और दूसरा कुछ अलौकिक मानसिक शक्ति यानी सिद्धियाँ प्राप्त करना। पहले का नाम हठयोग है, और वह असाधारण रूप से शरीर को सम्पूर्ण बनाने के लिए किया जाता है। दूसरे को राजयोग कहते है, और इसका अभ्यास मानसिक तथा योग-सम्बन्धी उन्नतियो के लिए किया जाता है। इतने पर भी इन दोनो ही योगो मे एक बात समान रूप से मिलती है, और वह है शरीर-सम्बन्धी। यह बात पातञ्जल-योगदर्शन मे दी है।

पंचक्लेशों में 'राग' तीसरा क्लेश है (२-३)। यह वह इच्छा, तृष्णा या आसक्ति है जो सुख भोगने या उसके साधनों के प्रति होती है। लेकिन

'सुखानुशायी रागः' (७-२)

यानी सुख में दुःख मिला हुआ है, इसलिए विवेकीजनों को उसका त्याग करना चाहिए। योगदर्शन में पहले तो काम-वासना का मनोवैज्ञानिक पहलू से विचार किया गया है, इसके बाद शारीरिक दृष्टि से।

योगाभ्यास की पहली सीढ़ी यमों की साधना है, जो पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। यह देखकर आश्चर्य होता है कि अपने को योगी कहनेवाले वकवादी चौथे यम यानी ब्रह्मचर्य को या तो जानते ही नहीं या उसे बतलाते ही नहीं। लेकिन पतंजलि मुनि के अनुसार ब्रह्मचर्य की साधना से बहुत बड़े लाभ होते हैं। उनका कहना है—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ (३८-२)

अर्थात्, जो ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित है उसे वीर्य या शक्ति-लाभ होता है। उसे तरह-तरह की सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं।

श्री मणिशंकर न० द्विवेदी कहते हैं —"यह तो शरीर-शास्त्र का सामान्य नियम है कि बुद्धि के साथ शुक्र का सम्बन्ध बहुत गाढ़ा है, और हम कहेंगे कि आध्यात्मिकता के साथ भी है। इस अमूल्य वस्तु का संचय करने से मनुष्य को शक्ति मिलती है, जिसे आदमी चाहता है। पहले इस नियम का पालन किये बिना कोई योग सफल नहीं होता।"

यह भी कह देना चाहिए कि ब्रह्मचर्य-पालन की क्रिया तथा उद्देश्य शास्त्रीय और तांत्रिक-रूप में भाष्यों में छिपे हुए दिये जाते हैं। जैसे कि कहा जाता है, सर्प के समान शक्ति सबसे निचले चक्र (अंडकोष) से चढ़कर सबसे ऊँचे चक्र (मस्तिष्क) में जाती है।

व्यक्तिगत सम्भोग-नीति

साधारणत व्यक्तियो, समाजो या जातियो के अनुभवो से ही नीतिशास्त्र की रचना होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर मालूम पडता है कि किसी-न-किसी महापुरुष ने नीति के नियम बनाये है। मूसा, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, सुकरात, अरस्तू, ईसा और उनके बाद के दूसरे महापुरुषो और दार्शनिको ने अपने-अपने देश और जमाने मे मनुष्य के आचार की कुछ कसौटी ज़रूर रक्खी थी। इससे हम देख सकते है कि सर्वमान्य नीति-शास्त्र का आधार दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान, और समाजशास्त्र के ऊपर रहता है। ये सब शास्त्र मिलकर वास्तविक या काल्पनिक मसाला दे देते है, जिसके ऊपर से कई सिद्धान्त अपने आप स्वयसिद्धि-से निकल पडते है। उन्ही सिद्धान्तो का सग्रह नीतिशास्त्र है। इसलिए किसी खास युग या सभ्यता की व्यक्तिगत सम्भोग-नीति उसीबात के आधार पर बनेगी, जिसका उस समय के लोगोंपर उनके अपने अनुभवो से अधिक असर पडा होगा। यद्यपि सामाजिक सम्भोग-नीति के समान यह व्यक्तिगत सम्भोग-नीति भी समय-समय पर बदलती रहती है, मगर इनपर दोनो मे ही कुछ ऐसी स्थिर बाते है जो कमोवेश स्थायी होती है।

इस युग के लिए व्यक्तिगत सम्भोग नीति निश्चित करते समय हमको आजतक की उन सभी बातो तथा सम्भावनाओ का खयाल रखना होगा, जिन्हे हम जानते है, और विद्वान लोग जिन बातो का समर्थन करते है उनपर खास तौर से ध्यान देना होगा अगर यह कहूँ कि मेरे लेख के पहले पाँच विभागो मे दिखलायी गयी हकीकतो पर ध्यान देते ही किसी भी बुद्धिमान और ईमानदार पाठक के मन मे कई तर्क-सिद्ध अनिवार्य परिणाम आयेंगे ही, तो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से जान पडेगा कि इन हकीकतो का एक ही परिणाम है और

वह है ब्रह्मचर्य का पालन। मगर इसके विरुद्ध हमे एक दूसरा प्राकृतिक नियम भी तुरत ही मिल जाता है। पहला नियम है प्राकृतिक उत्तेजना यानी काम-वासना का, और दूसरा और नया नियम है ज्ञान के, विज्ञान के, अनुभव के, विश्वास के और आदर्श के आधार पर निकले हुए ब्रह्म-चर्य का। पहले नियम यानी काम-वासना की पूर्ति करने से बहुत शीघ्र ही बुढापा और मृत्यु आती है, मगर नियम के पालन के रास्ते में इतनी कठिनाइयाँ पडी हुई है कि शायद ही कोई उसकी ओर ध्यान देता हो। लोग इस बात पर विश्वास करने को तैयार नही होते। वे तुरत ही कहने लगते है—मगर, लेकिन—? यहाँ यह बात विचारणीय है कि योगियो और भिक्षुओ के लिए सयम-नियम के जो कठिन नियम बनाये गये थे, उनका आधार केवल अन्ध-श्रद्धा या पौराणिक गपोरे ही नही है, किन्तु इस लेख मे बतलायी गयी शरीर-शास्त्र की बातो का विशिष्ट ज्ञान है।

मेरी जानकारी में काउण्ट टाल्सटॉय से अधिक जोरो से या स्पष्ट तौर पर किसी दूसरे आधुनिक लेखक ने सभोग-नीति को नही बतलाया है। अत मे उनके कुछ विचार यहाँ देता हूँ —

"१०२ अपनी जाति को कायम रखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति—यानी काम-वासना—मनुष्य में स्वभाव से ही रहती है। अपनी पशुता की दशा में वह इस इच्छा की पूर्ति करके अपना काम पूरा करता है और इससे भलाई होती है।

"१०३ मगर ज्ञान का उदय होते ही उसे जान पडने लगता है कि इस वासना की पूर्ति करने से खास उसकी अलग कुछ भलाई होगी, और वह अपनी जाति को कायम रखने के इरादे से विषय करने लगता है। यही विषय-सम्बन्धी पाप है।*

*पाठको को यहाँ यह याद रखना चाहिए कि टाल्सटॉय की पाप

"११० पहली हालत मे जबकि कोई ब्रह्मचर्य का पालन करना और अपनी सारी शक्तियो को परमात्मा की सेवा मे लगाना चाहता हो, तब उसके लिए सन्तानोत्पत्ति के हेतु से भी सम्भोग करना पाप होगा । जिसने अपने लिए ब्रह्मचर्य का मार्ग चुना है, उसके लिए विवाह भी स्वभाव से ही एक पाप होगा ।

"११३ जिसने ब्रह्मचर्य का मार्ग चुना है, उसके लिए विवाह करने मे यह पाप है कि अगर वह विवाह न करता तो शायद सबसे बडे काम को चुनता, ईश्वर की सेवा मे अपनी सारी शक्तियाँ लगाता, और इसलिए प्रेम के प्रचार और सबसे बडे मगल की प्राप्ति में शक्ति लगा देता, लेकिन विवाह करने से वह नीचे उतर आता है और अपना मगल-साधन नही कर पाता है ।

'११४ जिसने वश-रक्षा का मार्ग पकडा है, उसके लिए यह पाप है कि सन्तानोत्पत्ति न करने से या कम-से-कम कौटुम्बिक सबध न पैदा करने से, वह दाम्पत्य-जीवन के सबसे बडे सुख से अपनेको वञ्चित रखता है ।

"११५ इसके अलावा और सभी सुखो के समान, जो लोग सम्भोग के सुख को बढाने का प्रयत्न करते है, वे स्वाभाविक आनन्द को उतना ही अधिक कम करते जाते है ।"

पाठक देखेगे कि टाल्सटॉय का सिद्धान्त सापेक्षिक है, यानी किसी के लिए परमात्मा की ही ओर से या किसी बडे शिक्षक की ओर से पक्का नियम नही बना दिया गया है, किन्तु सभी को अपना-अपना मार्ग चुनना है । केवल इतना ही आवश्यक है कि जिसने अपने लिए जो मार्ग चुना है, वह उसीका पालन करे ।

की परिभाषा सामान्य परिभाषा से अलग है । वह पाप उसको कहते थे, जो प्रेम के प्रदर्शन में यानी सबके प्रति शुभ कामना के रास्ते में बाधक हो।

ऐसी धर्म-नीति में एक के बाद एक, मगर उतरते हुए, निषेध होंगे। जो आदमी अखण्ड ब्रह्मचर्य में विश्वास करता है, किसी बडे और ऊँचे शारीरिक तथा आध्यात्मिक लाभ के लिए जान-बूझकर इन्द्रिय-सयम का प्रयत्न करता है, उसके लिए किसी भी किस्म के सम्भोग का निषेध है। जिसने विवाह कर लिया है, उसके लिए पर-पुरुष या पर-स्त्री का सग मना है। इससे आगे बढकर अगर अविवाहितो के लिए जिनका अनियमित सम्भोग चलता है, वेश्या-सेवन जैसा जघन्य काम निषिद्ध है तो स्वाभाविक कर्म करनेवाले के लिए अप्राकृतिक कर्म बहुत ही बुरा है। इससे भी आगे चलकर किसी भी किस्म के व्यभिचारियो के लिए उसमें अतिशयता करनी बुरी गिनी जायेगी और नवयुवको व बच्चो के लिए उसमें उसका विचार स्थगित रखने को कहा जायेगा। सम्भोग-नीति का यही स्वरूप है।

मै यह कल्पना ही नहीं कर सकता कि कही ऐसे आदमी भी मिलेगे जो इस सामान्य सम्भोग-नीति को समझ न सके। ऐसे थोडे ही आदमी मिलेंगे, जो गम्भीरता-पूर्वक विचार करने के बाद भी इसका विरोध करें। मगर फिर भी ऐसी नीति का विरोध वाग्जाल या तर्कजाल से करने की प्रवृत्ति दिखलाई पडती है। लोग मान बैठते है चूँकि कि ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन है, इसलिए ब्रह्मचर्य का समर्थन करना ही अनुचित है। ऐसी दलील करनेवालो को तो तर्क के अनुसार अपने ही पति या पत्नी से सतुष्ट रहने—जो कि कुछ लोगो के लिए मुश्किल काम होता है—या दम्पती के बीच भी काम-तृप्ति की अति न करने, या केवल प्राकृतिक कर्म ही करने आदि बातो का भी विरोध करना चाहिए। वे अगर एक आदर्श का विरोध करते है तो वे सभी आदर्शों का विरोध करेंगे और हमें बुरे पापो और काम-लालसाओ के

गड्ढे मे डालकर ही दम लेगे। भला वे ऐसा क्यो न करे ? सच पूछो तो एकमात्र सच्चा और तर्कपूर्ण नियम यह है कि हम अपने आदर्श के ध्रुवतारे को देखते हुए चले, जो कि हमे सभी भूलभुलैयो से निकालकर, विरोधी नियमो का बल तोडकर, सीधे रास्ते पर लेजायेगा इस भाँति समझ-बूझकर स्वेच्छापूर्वक इस नीति के अनुसार आचरण करनेवाले से यह आशा रक्खी जासकती है कि नौजवानी के अप्राकृतिक कर्मों से कही ऊँचे उठकर वह प्राकृतिक आचरण, चाहे वह अनियमित भले ही हो, करने लगेगा। इस स्थिति मे से भी निकलकर दाम्पत्य-धर्म के सयम-नियम मे बँध सकता है और अपने तथा अपनी सहधर्मिणी के लाभ के लिए जहाँतक वह कर सके सयम का पालन कर सकता है। यह नीति सम्भवत उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी बना सके, नही तो उसे अतिशयता के गड्ढे मे गिरने से तो बहुत-कुछ रोक ले सकती है।

सामाजिक सम्भोग-नीति

जैसे कि व्यक्तियो की समष्टि का नाम समाज है, ठीक वैसे ही व्यक्तिगत सम्भोग-नीति से ही सामाजिक सम्भोग-नीति पैदा होती है। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते है कि व्यक्तिगत सम्भोग-नीति मे समाज कुछ वृद्धि करता है, कुछ मर्यादा जोडता है। इसका मुख्य उदाहरण विवाह-सस्था है। विद्वान् वैज्ञानिको ने विवाह के इतिहास पर बहुत-कुछ लिखा है और इस सम्बन्ध मे बहुत अधिक मसाला इकट्ठा किया गया है। इसलिए आजकल विवाह-सस्था मे जो परिवर्तन सुझाये जा रहे है उनका उल्लेख कर सकने के लिए उपर्युक्त विद्वानो के निष्कर्षो का केवल साराश भर दिया जायेगा।

मनुष्य-जाति मे सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध मे माता का महत्व पिता से अधिक है। माता को ही लेकर कुटुम्ब की रचना होती है। फलत

एक जमाने में मातृ-वश यानी माता के ही शासन की विधि प्रचलित थी और इसीलिए बहुपति-विवाह अथवा एक स्त्री के कई पति होने की प्रथा भी शुरू हुई थी। एशिया की कुछ आदिम जातियो मे अब भी इस प्रथा के अवशिष्ट चिह्न पाये जाते है। कई पतियो में से जो सबसे बलवान् और रक्षा करने में समर्थ होता था, धीरे-धीरे उसका औरो से विशेष आदर होने लगा। और समय पाकर वह जिस पद पर प्रतिष्ठित हुआ उसीका विकास होकर पति का पद बना। माता के साथ जिन कई आदमियो का सम्बन्ध रहता था, उनमें जो सबसे अधिक बलशाली, सुन्दर और सशक्त होता, उसे दूसरो से कुछ ऊँचा पद दिया गया। अंग्रेजी भाषा मे पति या गृहपति के लिए 'हसबैण्ड' (Husband) शब्द प्रचलित है। हसबैण्ड का मूल है—Husbondı, जिसके मानी होते है, घर मे रहनेवाला। इसी एक शब्द में विवाह-संस्था का बहुत कुछ इतिहास भरा हुआ है। सभी पतियो में से जो पत्नी के साथ उसके घर पर रहता था, वह धीरे-धीरे गृहपति या हसबैंड कहलाने लगा। क्रमश वह घर का मालिक बन गया और ऐसा ही कोई 'हसबैंड' जाति का सरदार और राजा बना। पुरुषों का शासन शुरू होते ही बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पडी, जैसे कि स्त्रियो के राज्य में बहुपतित्व की प्रथा चली थी।

इसलिए, अगर सामाजिक रूप मे नही तो अपने स्वभाव से ही, स्त्री बहुपतित्व के और पुरुष बहुपत्नीत्व के रिवाज को पसन्द करनेवाले होते है। पुरुष अपनी इच्छाएँ सभी ओर दौडाकर प्राय अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को ही पसन्द करता है। स्त्री भी वही करती है। लेकिन अगर स्त्री-पुरुषो की अनियमित, स्वाभाविक और मानसिक वासनाओं पर कोई लगाम न लगती, तो, क्या आदिम और क्या आधुनिक मनुष्य-

समाज का नाश निश्चय ही हो जाता। मनुष्य से नीचे दर्जे के और सभी जानवरो मे इन सब इच्छाओ की अतिशयता है। समाज ने विवाह के रूप में यह नियन्त्रण खोजा और अन्त मे एक पुरुष के लिए एक ही स्त्री के साथ विवाह का नियम प्रचलित हुआ। इसका एक ही विकल्प है। और वह है स्त्री-पुरुषो का अनियमित मिलन। ऐसी अनियमितता के प्रचार से मनुष्य-समाज का और कम-से-कम आधुनिक समाज का नाश निश्चित है। इस विवाह-रूपी अकुश और अनियमितता के बीच हम सहज ही सग्राम देख सकते है। वेश्या-गमन, अनियमितता और अवैध सहवास, व्यभिचार और तलाको से नित्यप्रति यही सिद्ध होता है कि पुराने और आदिम सम्बन्धो के ऊपर एक पत्नी से ही विवाह-सम्बन्ध रखने की प्रथा अभीतक हावी नही हो सकी है। क्या कभी ऐसा हो सकेगा ?

इस बीच हमे एक और उपाय पर विचार करना जरूरी है, जो कि गुप्तरूप से बहुत दिनो से प्रचलित रहा है मगर हाल मे ही जिसने बेशर्मी से सिर उठाना शुरू किया है। यह है, 'सन्तति-निग्रह'। इसका तरीका है ऐसी दवाओ या यत्रो का प्रयोग करना, जिनसे गर्भाधान न होने पाये। गर्भाधान होने से स्त्री पर जो भार पडता है, उसके अलावा पुरुष को, और खासकर सद्भावना रखनेवाले पुरुष को, बहुत काफी समय तक सयम रखना पडता है। सन्तति-निग्रह से तो आत्म-सयम करने की कोई विशेषता ही नही रह जाती, और जबतक इच्छा ही कम न हो जाये, इन्द्रियाँ शिथिल न हो जाये, तबतक कामवासना को तृप्त करते जाना सभव हो जाता है। अलावा इसके, विवाह-सम्बन्ध के बाहर भी इसका असर जरूर पडता है। क्योकि यह अनियमित, अनियन्त्रित सन्तति-हीन सम्भोग के लिए दरवाजा खोल देता है, जोकि आधुनिक

उद्योगो, समाज-शास्त्र तथा राजनीति की दृष्टि से खतरनाक है। मै इन बातो पर यहाँ विचार नही कर सकता। इतना कहना ही काफी है कि सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपायो से स्वपत्नी और पर-स्त्री के साथ अतिशय सम्भोग की सुविधा हो जाती है और, अगर मेरी शरीर-शास्त्र सम्बन्धी दलीले सही है तो, इससे समाज और व्यक्ति दोनो का अकल्याण होना अनिवार्य है।

उपसहार

खेत मे डाले हुए बीज के समान यह लेख भी कुछ ऐसे लोगो के हाथ पडेगा जो इससे घृणा करेगे, और कुछ ऐसो की भी नजर से गुजरेगा जो महज आलस्य या अयोग्यता के कारण इसे समझ नहीं सकेंगे। जो लोग इसमें बतलाये विचारो को पहले-पहल सुनेंगे, उनमे इसके प्रति विरोध-बुद्धि पैदा होगी, क्रोध भी उत्पन्न होगा, और बहुत ही थोडे आदमियो को यह सच्चा और उपयोगी जान पडेगा, और उनके दिलो में भी शकाएं तथा सन्देह उठेगे। सबसे भोले-भाले लोग कह उठेगे, "आपकी राय मे तो किसी हालत मे विषय-भोग करना ही नहीं चाहिए। अजी! तब तो सृष्टि का ही लय हो जायेगा। इसलिए आपके विचार जरूर ही गलत होने चाहिएँ।" मेरा जवाब है, कि मेरे पास ऐसा कोई भयानक रसायन है ही नहीं। ब्रह्मचर्य का पालन करने के प्रयत्न से जितनी जल्दी सृष्टि का लय होगा, उससे कही अधिक तेजी से सन्तति-निग्रह के उपाय पृथ्वी को मनुष्यो के भार से हल्का कर देगे। अत सन्तान को जन्म लेने से रोकने का सबसे सबल तरीका ब्रह्मचर्य का ही है। मेरा हेतु बहुत सीधा-सादा है। मै तो अज्ञान और स्वच्छन्दता के जवाब के रूप में कुछ दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्यो को रखकर इस युग के लोगो मे स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध शुद्ध करने मे सहायता देना चाहता हूँ।

: २ :

सब रोगों का मूल

[थर्स्टन नामक अमेरिकन लेखक ने 'विवाह का तत्त्वज्ञान' नामक एक पुस्तक लिखी है, जो मद्रास की गणेशन् कम्पनी से प्रकाशित हुई है। उसका साराश नीचे दिया जाता है।]

'विवाह का तत्त्वज्ञान' के लेखक थर्स्टन ने १० वर्ष तक अमेरिका की सेना में काम किया है और 'मेजर' के पद तक पहुँचकर सन् १९१९ मे नौकरी छोडी तबसे वह न्यूयार्क में रहते है। इन १८ वर्षों मे लेखक ने जर्मनी, फ्रास, फिलिपाइन द्वीप समूह, चीन और अमरीका में विवाहित दम्पतियो की स्थिति का खूब अध्ययन किया। इस अभ्यास के मूल मे लेखक की अपनी अवलोकन-शक्ति तो थी ही, साथ ही उन्होने प्रसूति-शास्त्र मे निपुण और स्त्री-रोग-चिकित्सक सैकडो डाक्टरो से पत्र-व्यवहार भी किया। इसके अलावा उन्होंने सेना मे भर्ती होनेवाले उम्मीदवारो की शारीरिक योग्यता की जाँच के आँकडो तथा सामाजिक आरोग्य-रक्षक मण्डलो के इकट्ठा किये हुए दूसरे आँकडो का भी ठीक उपयोग किया है।

लेखक ने सैकडो डाक्टरो से कैसे प्रश्न पूछे और उनके कैसे जवाब मिले, यह वह इस प्रकार बताते है —

प्र०—आजकल विवाहित स्त्री-पुरुषो मे सगर्भावस्था मे भी सम्भोग करने का रिवाज पडा हुआ है या नही ?

लगभग सभीका जवाब यही था कि ऐसा रिवाज पडा हुआ है।

प्र०—इस प्रकार सम्भोग करने से गर्भ को तथा गर्भिणी को ज़हर चढना सम्भव है या नही ?

उ०—अवश्य सभव है।

प्र०—इस सम्भोग के परिणामस्वरूप जो बालक होगे, उनके अग विकृत होने की सभावना है या नही ?

उ०—बहुतसे डाक्टर तो खुद ही अमुक मुद्दत तक सभोग करने की इजाज़त देते है, इसलिए वे कैसे लिखे कि बच्चो के अग विकृत होते है ? फिर भी २५ फीसदी ने तो लिखा है कि विकृत अगवाले बालक पैदा होते है।

प्र०—अगर विकृताग बालको के जन्म का कारण सगर्भासम्भोग न हो, तो और क्या हो सकता है ?

इसके उत्तर में बहुत विभिन्नता है और बहुत से तो लिखते है कि हम कारण नही बतला सकते।

प्र०—आजकल की शिक्षित स्त्रियाँ क्या गर्भाधान रोकने के साधनो का इस्तैमाल करती है ?

उ०—हाँ।

प्र०—इन साधनो से और कुछ नही तो क्या स्त्री की जननेन्द्रिय को बेहद हानि होनी सभव नहीं है ?

उत्तर में ७५ सैकडा डाक्टर लिखते है कि सभव है। इसके अलावा लेखक ने कितने ही दूसरे चौंकानेवाले आँकडे दिये है, जो जानने लायक है। सन् १९२० में अमेरिका की सरकार ने फौज मे लिये जानेवाले लोगो की अयोग्यताओ के सम्बन्ध मे एक किताब प्रकाशित की थी। उसमे ये बातें मिलती है—

सेना में भर्ती करने की योग्यता के सम्बन्ध

में कितने आदमियो की परीक्षा ली गयी ?	२५ लाख १० हजार।
इनमें कितनो को कोई-न-कोई शारीरिक या मानसिक बीमारी थी ?	१२ लाख ८९ हजार।
किसी भी सेना-सम्बन्धी काम के अयोग्य कितने थे ?	५ लाख ४१ हजार।

इन उम्मीदवारो की उम्र १८ से ४५ वर्ष तक थी।

इतनी जाँच और अपने कई देशो के अवलोकन से लेखक ने कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले है, जो लेखक के ही शब्दो मे नीचे दिये जाते है —

१—प्रकृति का तो यह नियम है ही नही कि चूँकि पुरुष स्त्री की परवरिश करता है और स्त्री उसकी ब्याहता कहलाती है केवल इसीलिए वह पुरुष की गुलाम बनकर रहे और एक ही घर मे उसके साथ रहकर अथवा एक ही बिस्तर पर सोकर, नित्य ही उसके विषय का साधन बने।

२—सर्वत्र ऐसा रिवाज पड गया है कि स्त्री विवाह-बन्धन मे पडने से ही पुरुष की विषयेच्छा को तृप्त करने के लिए बँधी हुई है, और इस रिवाज के परिणाम-स्वरूप रात-दिन अमर्यादित विषय-भोग का साधन बनकर विवाहित स्त्रियो मे से ९० फीसदी तो वेश्या के समान जीवन बिताती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का कारण यह है कि विवाहित स्त्री का पति के साथ वेश्यापन स्वाभाविक और उचित माना जाता है, क्योकि विवाह का कानून ऐसा ही मनवाता है, और यह भी माना जाता है कि पति का प्रेम कायम रखने के लिए स्त्री ऐसा करने के लिए बँधी हुई है।

ऐसे सतत निरकुश विषय-भोग के अनेक भयकर परिणाम आते है। जैसे—

(१) स्त्री के ज्ञानतन्तु अत्यन्त निर्बल पड जाते हैं, जल्दी बुढापा आ घेरता है, शरीर रोग का घर बनता है, स्वभाव चिड-चिडा और झगडालू बन जाता है, और जो बालक पैदा होता है उसकी भी वह पूरी सार-सम्हाल नही कर सकती।

(२) गरीबो में इतने बालक उत्पन्न होते है कि उनकी पूरी परवरिश और सार-सम्हाल अशक्य हो जाती है। ऐसे बालको को रोग आ घेरते है, और बडे होने पर वे गुनहगार बनते है।

(३) ऊँचे वर्ग के लोगो मे निरकुश विषय-भोग के कारण सन्तानोत्पत्ति को रोकने और गर्भपात के साधनो का इस्तैमाल होता है। इन साधनो का इस्तैमाल अगर आमवर्ग की स्त्रियो को सिखाया जाये तो प्रजा रोगी, अनीतिमान तथा भ्रष्ट होगी और अन्त मे उसका विनाश हो जायेगा।

(४) अतिशय सम्भोग के कारण पुरुष का पुरुषत्व नष्ट होता है, वह काम करके अपना निर्वाह करने के लायक भी नही रहता, और अनेक रोगो के परिणामस्वरूप वह अकाल में ही मर जाता है। अमरीका मे आज विधुरो की अपेक्षा विधवाएँ २० लाख अधिक है। इनमे ऐसी बहुत कम ही है जो युद्ध के कारण विधवा बनी है। सच तो यह है कि विवाहित पुरुषो का बडा भाग ५० वर्ष की उम्र तक पहुँचने के पहले ही जर्जरित हो जाता है।

(५) अतिशय सम्भोग के कारण पुरुष और स्त्री दोनो मे एक प्रकार की हताशता आ जाती है। दुनिया मे जो दरिद्रता है, शहरो में जो गन्दे और गरीब मुहल्ले है, वे मनुष्यो को मजदूरी न मिलने के कारण उत्पन्न नही हुए बल्कि आज की वैवाहिक स्थिति के कारण पोषित होनेवाले निरकुश विषय-भोग के परिणाम है।

(६) गर्भावस्था मे स्त्री जो विषय-भोग का साधन बनती है, सन्तति के भविष्य की दृष्टि से उसका परिणाम अत्यन्त भयकर है। गर्भावस्था मे सम्भोग आदमी को पशु से भी हीन बनाता है। ग्याभन गाय साँड को अपने पास कभी आने ही नही देगी, फिर भी यदि साँड उसपर बलात्कार कर ही डाले तो जो बछडा पैदा होगा वह विकृताग होगा—यानी उसके या तो तीन या पाँच पैर होगे, या दो पूँछें होगी, अथवा दो सिर होगे। केवल मनुष्य ही यह मानता मालूम पडता है कि पशुओ को ऐसे अत्याचारो के जो परिणाम भोगने पडते है वे मनुष्यो को नही भोगने पडते इस मान्यता के पीछे भी एक भ्रम छिपा हुआ है। वह यह कि पुरुष से बहुत दिनो तक विषय-तृप्ति किये विना रहा ही नही जा सकता। इस भ्रम की उत्पत्ति भी स्पष्ट है। हमेशा ही अगर विस्तर पर विकारोत्तेजक सगी मौजूद हो, तो भला पुरुष विषय-तृप्ति किये विना कैसे रह सकता है ?

किन्तु डॉक्टरो के अभिप्रायो और अवलोकन के परिणामस्वरूप जाना गया है कि गर्भाधान के पहले की स्थिति में अगर अतिशय सम्भोग अनिष्ट-मूलक है तो गर्भावस्था मे होनेवाला सम्भोग तो नरक की खान ही है। इसके परिणामस्वरूप बालको मे ठेठ पागलपन तक के रोग होने सभव है और खुद स्त्री के अपने दुख का पार नही रहता, क्योकि गर्भावस्था मे किसी स्त्री को सम्भोग की इच्छा नही होती।

इसके बाद लेखक चीन, भारत और अमरीका मे एक ही घर और एक ही कमरे मे अनेक स्त्री-पुरुषो के सोने से अनीति तथा निर्वीर्यता का जो साम्राज्य फैल गया है, उसकी बात करते है और फिर इस स्थिति के निवारण के उपाय बतलाते है।

इन उपायो में कितने तो विवाह के कानून में सुधार करने के है,

मगर जो उपाय आदमी के हाथ मे हैं उन्हे भी लेखक ने बतलाया हैं। कानून तो जब सुधरे तब देखा जायेगा, किन्तु कुछ सुधार तो ऐसे है जिन्हे मनुष्य खुद ही अमल मे ला सकते हैं। जैसे —

(१) इस कुदरती नियम का खूब प्रचार करना चाहिए कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा बगैर, स्त्री-पुरुष का सयोग नही होना चाहिए।

(२) इस सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिए कि केवल पति होने के कारण ही पुरुष को स्त्री की सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बिना उसे स्पर्श करने का अधिकार नही मिलता।

(३) इस ज्ञान का प्रचार करना चाहिए कि केवल विवाह-सम्बन्ध मे जुड जाने से स्त्री पति के साथ एक ही कमरे में और एक ही बिस्तरे पर सोने के लिए बँधी हुई नही हैं। इतना ही नही बल्कि सिवा सन्तानोत्पत्ति के हेतु के उनका इस तरह से सोना गुनाह है।

इतने नियमो का पालन हो तो, लेखक का कहना हैं ससार के आधे रोगो का नाश हो जायेगा—गरीबी नष्ट हो जायेगी, रोगी और विकृताग बालक नही होगे, विरोध और झगडे दूर होकर लडाइयाँ भी रुकेगी और स्त्री-पुरुष के लिए लोक-कल्याण के अर्थ पुरुषार्थ करने का मार्ग अधिक प्रशस्त हो जायेगा।

× × ×

'विवाह का तत्त्वज्ञान' पुस्तक प्रकाशित होने पर लेखक ने उसे अपने मित्रो के पास भेटस्वरूप भेजा। उनमें से एक बहन ने उन्हे एक पत्र लिखा, जिसके प्रत्युत्तर मे उन्होने अपने विचारो को विशेष स्पष्ट करनेवाली और अपने बतलाये हुए अभिप्राय को अकाट्य युक्तियो से अधिक मजबूत करनेवाली एक छोटी पुस्तक और प्रकाशित की, जो पहली से

भी अधिक मननीय और महत्त्वपूर्ण है ।

उस बहन के पत्र का आशय सक्षेप मे यह है "आपकी पुस्तक के लिए अनेक धन्यवाद । अत्यन्त विषय-भोग ही हमारे रोगो का मुख्य कारण है, ऐसा बतलानेवाली आपकी पुस्तक पहली ही कही जा सकती है । विषयेच्छा महापुरुषो मे भी होती है । कई महापुरुष इससे मुक्त है और कई सामान्य मनुष्यो में यह अत्यन्त प्रबल होती है । परन्तु इसकी वास्तविक शारीरिक आवश्यकता कितनी है, मानली हुई कहलानेवाली कितनी है, और केवल आदत पड जाने से कितनी बढी है, इसकी जाँच करना जरूरी है । मसलन तीन वर्ष के लिए समुद्र पर व्हेल मछली के शिकार को जानेवाले पुरुष के शरीर पर या ऐसे ही अन्य कारणो से लम्बी मुद्दत तक स्त्री से जुदा रहनेवाले पुरुष के शरीर पर इसका क्या असर होता है, यह जानना जरूरी है । एक बात और । अति विषय-भोग के अनिष्ट परिणाम से तो इकार नही, परन्तु क्या सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनो की भी जरूरत नही है ? गर्भपात या अविवाहितो से होनेवाली सन्तानोत्पत्ति के बजाय क्या यह ठीक नही है कि कृत्रिम साधनो का प्रयोग करके सन्तानोत्पत्ति ही न होने दी जाये ? प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध आचरण करनेवाले मनुष्य सन्तानोत्पत्ति रोकने के परिणाम-स्वरूप बाँझ होकर बिना सन्तान के मर जाये तो उसमे समाज का क्या बिगडता है ? तीसरी बात यह है । मानलो कि हम सब सयमी बन गये । तो भी सामाजिक प्रमाण तभी निभ सकता है जबकि सामान्यत प्रत्येक दम्पति को तीन सन्तान से ज्यादा न हो, और इसका यही अर्थ हो सकता है कि दम्पती अपने जीवन मे गिनी-गिनायी बार ही सम्भोग करे । इतना सयम क्या शक्य है ? सशक्त और सुस्वस्थ पुरुषार्थी मनुष्य क्या दीर्घकाल तक सयम का पालन कर सकेगे ?"

दो कामनाएँ

इस पत्र के उत्तर मे लिखी गयी पुस्तक का साराश निम्न प्रकार है —

सामान्यत पुरुषो मे आहार की इच्छा के अतिरिक्त दो कामनाएँ रहा करती है। एक कामना सुन्दर स्त्री के सग विषयभोग की, और दूसरी कामना पुरुषार्थ की—यानी धर्म, अर्थ और मोक्ष की। इन दोनो में परस्पर सम्बन्ध है, और दोनो एक-दूसरे पर असर करनेवाली है। बहुतों मे विवाह-पूर्व के अत्यन्त विषयभोग से पुरुषार्थ की कामना मरी हुई होती है, और बहुतो मे विवाह-बाद के थोडेसे वर्षो मे ही अत्यन्त विषय-भोग करने से मर जाती है अथवा मन्द पड जाती है। स्वस्थ वीर्यवान पुरुषो मे विषयेच्छा समान होती है, परन्तु यदि पुरुषार्थ की कामना प्रबल हो जाये तो विषयेच्छा दीर्घकाल तक के लिए मन्द पड जाती है। सच्ची जरूरत है किसी महान् ध्येय की, कि जिसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगा देने का सकल्प करले।

ऐसे ध्येय अनेक है। एक सामान्य ध्येय तो उत्तम सन्तति पैदा करना ही है। अपनी स्त्री की स्वाभाविक सन्तानेच्छा को तृप्त कर स्त्री को प्रसन्न रखकर स्वस्थ बालक पैदा करके उस बच्चे का पालन-पोषण करने, उसे शिक्षित करने तथा योग्य नागरिक बनाने मे सलग्न रहने से विषयेच्छा लुप्त हो जानी चाहिए। इन तमाम प्रवृत्तियो के लिए उसे अपने शरीर को बलवान बनाना चाहिए, शारीरिक श्रम भी खूब करना चाहिए। इसके सिवा उसे चाहिए कि स्त्री के साथ एक बिछौने मे न सोये। दूसरा ध्येय है कीर्ति का, यानी, मनुष्यो का कल्याण करके या अन्य कोई भारी पराक्रम करके नाम कमाना। सम्भव है कि मनुष्य यश को प्राप्त करके विषयेच्छा विशेष अच्छी तरह से भोगने का अवसर प्राप्त

करना चाहे, किन्तु कीर्ति की लालसा मूल वासना को उस वक्त के लिए तो दबा ही देती है ।

स्त्री ही प्रजा के आदर्शों की जननी है । ये आदर्श स्त्री से ही पुरुषो में आते है, और इनकी पुष्टि की प्रेरणा भी स्त्रियो से ही मिलती है । इसलिए, मै तो कहूँगा कि जिस समाज मे स्त्री की कीमत ज्यादा है, जिस समाज में स्त्री उर्वशी की तरह विक्रम के वश है, वह समाज अधिक उत्कर्षशील है । जिस देश मे स्त्री की कीमत कम है, अर्थात् जहाँ स्त्री प्राप्त करने मे पुरुषो को कुछ मेहनत नही करनी पडती, उस देश में गरीबी और गन्दगी ज्यादा होती है । अत जहाँ स्त्री का मूल्य अधिक होता है वहींकी प्रजा सम्पत्तिशाली हो सकती है ।

व्हेल के शिकार को जानेवाले और दीर्घकाल तक स्त्री का वियोग सहनेवाले माँझियो के बारे में आपने पूछा है । पर इन लोगो को खूब काम करना पडता है, इसलिए इनके स्वास्थ्य पर तो विषयेच्छा की अतृप्ति का कोई असर नही ही पडेगा । हाँ, इन लोगो को जब कोई काम न हो तो इन्हे विषय-तृप्ति की अनेक बुरी आदते पड ही जाती है । ये लोग शिकार से वापस लौटकर अपनी सारी कमाई विषय-भोग और शराब खोरी मे गंवा देते है, क्योकि इसी ध्येय को सामने रखकर ये शिकार के लिए जाते हैं ।

कृत्रिम साधन

कृत्रिम साधनो द्वारा सन्तानोत्पत्ति रोकने का जो प्रश्न आपने किया है, वह गम्भीर है, उसका जवाब ज़रा विस्तार से देना पडेगा । इन साधनो से नुकसान नही होता ऐसा सबूत तो नही ही मिलता, ऐसा मे अपनी खोजो और अवलोकन के फलस्वरूप जोर देकर कह

सकता हूँ। बल्कि, अनुभवी और ज्ञानवान स्त्री-रोग-चिकित्सक तो साफ तौर पर कहते है कि शरीर और सदाचार पर इन साधनो का असर बहुत बुरा पडता है। और यह प्रत्यक्ष ही है। इस सम्बन्ध मे एक-दो बाते ध्यान देने योग्य है। बालक की इच्छा न होने पर सयम का प्रेरक बल कोई नही रहता। मनुष्य उस स्त्री मे ही रम जाता है और उसकी पुरुषार्थ-कामना मन्द पड जाती है। स्त्री उसे दूसरी स्त्रियो के पास जाने से रोकने के लिए अपना ही गुलाम बनाने की चेष्टा करती है, इधर बहुत समय तक गर्भ-निरोध करने से उसकी अपनी विषयेच्छा प्रबल होती ही जाती है। नतीजा यह होता है कि कुछ ही वर्षो में पुरुष निर्वीर्य बन जाता है और किसी भी रोग का सामना करने की उसमे शक्ति नही रहती। इस निर्वीर्यता को रोकने के लिए बहुत बार अनेक भद्दे साधनों का उपयोग किया जाता है, जिसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष में एक-दूसरे के प्रति तिरस्कार पैदा होता है और अन्त मे तलाक यानी विवाह-विच्छेद की नौबत आ जाती है।

जानकार लोग कहते है कि स्त्रियो को होनेवाले 'कैसर' जैसे रोगो का मूल कारण इन साधनो का इस्तैमाल ही है। स्त्रियो के कोमल-से-कोमल मज्जातन्तुओ पर इन कृत्रिम साधनो का बहुत बुरा असर पडता है और उससे अनेक रोग पैदा होते है।

बहुत से अनुभवी डाक्टर मानते है कि कैसर जैसे रोग कृत्रिम साधनो के इस्तैमाल से ही होते है और बाकी के दूसरे रोग इन साधनो के कारण होनेवाले अति सभोग से पैदा होते है।

बहुत से प्रतिष्ठित डाक्टरो का यह भी कहना है कि इन कृत्रिम साधनो के कारण बहुत-सी स्त्रियाँ बाँझ होजाती है, स्त्री का जीवन शुष्क होजाता है और उसके लिए ससार ज़हरीला बन जाता है।

जज लिण्डसे का भ्रम

अमेरिकन जज लिण्डसे ने इन कृत्रिम साधनों की खोज को बहुत महत्व दिया है, पर उससे जो भयंकर नाश होता है उसका उन्हें भान नहीं है। ज़रा देखिये तो, पेरिस में पचहत्तर हज़ार तो रजिस्टर की हुई ही वेश्याएँ हैं, और उनसे कई गुना अधिक रजिस्टर न की हुई खानगी वेश्याएं हैं। फ्रांस के अन्य शहरों में भी इस गन्दगी की कोई हद नहीं है। जननेन्द्रिय के रोगों का भी कोई ठिकाना नहीं है। हज़ारों स्त्रियाँ इन्हीं रोगों से दुखित हो डाक्टरों की तलाश में रहती हैं। कितने ही वर्षों से फ्रान्स में जन्म-सख्या मृत्यु-सख्या से कहीं गिरी हुई है। नैतिक दृष्टि से फ्रान्सवासियों का नाम ससार में बहुत घट गया है और फ्रान्स की पुत्रियाँ गुलामी के व्यवसाय में ज्यादा-से-ज्यादा लगती जाती हैं। अन्तिम १०० वर्षों में फ्रान्स का यह हाल हुआ है, फिर भी जज लिण्डसे को अपने साधनों का नयी खोज के नाम से वर्णन करते शर्म नहीं आती।

महाभयंकर बात तो यह है कि एक मर्तबा ऐसे कृत्रिम साधनों का प्रचार बेधड़क होने लग गया कि फिर इस भद्दे ज्ञान को रोकने का कोई उपाय नहीं, और उसके प्रचार को रोकने की किसीमें शक्ति भी नहीं रहेगी। फिर, सबसे पहले ये बातें प्रजा के युवक-वर्ग में ही पहुँचती हैं। फ्रान्स के वेश्यागृहों में कोमलवय की कुँवारी और विवाहिता अभागी स्त्रियों के यौवन और नीति का हाट लग रहा है।

जज लिण्डसे, बहुत वर्ष हुए जब, अपने देश के युवा अपराधियों की अदालत के न्यायाधीश रह चुके हैं। इन युवा अपराधियों की जवानी प्राप्त होनेवाले बगानों का न्यायाधीश ने उल्टा ही उपयोग किया है, और अपनी पुस्तक में इन उल्टे साधनों की सिफारिश करके

तमाम प्रजा को उल्टी राह लगाया है।

परन्तु अपनी ही पुस्तक में दिये हुए प्रमाणों का रहस्य भला खुद उन्हें न सूझा होगा ? वर्जीनिया एलिस नाम की एक स्त्री का पत्र इन न्यायाधीश महाशय ने अपनी पुस्तक में दिया है। वह बेचारी लिखती है कि मैं चार होशियार डाक्टरों से मिल चुकी हूँ, और मेरा पति दूसरे दो डाक्टरों से सलाह ले आया है; इन छहों डाक्टरों ने सलाह दी है कि कृत्रिम साधनों को काम में लाने से चाहे कुछ समय तक तन्दुरस्ती पर असर पड़ता न दिखाई दे, परन्तु थोड़े ही समय के बाद स्त्री-पुरुष दोनों ही हाथ मलने लगते हैं, और इस अनिष्ट से ऐसा दर्द होता है कि जिसके लिए अपेण्डिसाइटिस कहकर ऑपरेशन किया जाता है, जब कि दर्द असल में दूसरा ही होता है। क्या ये डाक्टर झूठे हैं ? लेकिन ऐसा कहने में उन्हें कोई लाभ नहीं है। उल्टा कृत्रिम साधनों का उपयोग करने से रोग बढ़ते हैं और उनका व्यवसाय ज्यादा चलता है। पर ये डाक्टर अनुभवी, प्रतिष्ठित और लोक-हित को समझनेवाले थे।

जज लिण्डसे और उनके अनुयायी अब जोर-शोर के साथ उन कृत्रिम साधनों के प्रचार में लग गये हैं। यदि यह प्रचार बढ़ता रहा तो देश में हजारों नीमहकीम इन साधनों को लेकर फिरते रहेंगे और बड़ा नुकसान पहुँचायेंगे।

जज लिण्डसे खुद ही सन्तानोत्पत्ति रोकने के साधनों का प्रचारक एक मण्डल स्थापित कर बैठे हैं और सतयुग का उदय करनेवाली एक संस्था के तौर पर उसका वर्णन करते हैं। पर, सतयुग तो नहीं, उल्टे भयंकर कलियुग उसमें से पैदा होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। जन-साधारण में इन साधनों का प्रचार हुआ तो लोग बिना मौत मरेंगे,

सिसक-सिसककर मरेंगे, और शायद इस तरह सत्यानाश होगा तभी कही भावी प्रजा इन साधनो से महामारी की भाँति भागना सीखेगी।

जज लिण्डसे का उद्देश्य बुरा नही है। वह बेचारे तो सिर्फ यह चाहते है कि प्रत्येक कुटुम्ब मे बच्चो का अन्धाधुन्ध बढना रुक जाये, यानी जितने स्त्री चाहे और जितनो की पुरुष परवरिश कर सके उतने ही बच्चे हो। उनका दूसरा उद्देश्य यह है कि स्त्रियो मे विषय-सेवन की जो स्वाभाविक इच्छा है उसे तृप्त करने का उपयुक्त साधन उन्हे मिल जाये। इस बात का भूत उनकी अदालत में आनेवाली निर्लज्ज लडकियो ने उनके मन मे पैदा किया है। पर मेरा तो यह मानना है कि उनकी अदालत मे आकर ऐसी गवाही देनेवाली लडकियाँ अपवाद-रूप ही होगी। दूसरी बहुत-सी लडकियो से मै मिला हूँ, वे विषयेच्छा की बातो को जज लिण्डसे के सामने बयान देनेवाली लडकियो की तरह कवित्व और तत्वज्ञान का मुलम्मा चढाकर तो कही नही सकती। बहुत-सी समझदार लडकियाँ और माताएँ जानती हे कि यह इच्छा केवल भ्रम है। परन्तु जज लिण्डसे के सामने कई वर्षों से कितनी ही ऐसी नासमझ लडकियाँ आती है कि जिससे उनके जैसे विवाहित, अधेड उम्र के, विद्वान पुरुष भी गुमराह होगये और अनिच्छित बालको की उत्पत्ति रोकने के साधनो की एक किताब ही उन्होने लिख डाली। नही तो ऐसा कौन होगा, जो इतना ज्ञान होने पर भी निर्भय होकर कॉलेज मे पढनेवाले लडके-लडकियो को सुखपूर्वक सह-चार-सुख भोगने को कहे और उसके लिए कानून बनाने का आन्दोलन करे? यदि उनका ज्ञान ठिकाने होता, तो उन्हे मालूम होता कि कितने ही सुन्दर तेजस्वी युवक इस पाप से आत्म-हत्या करना सीखते है, क्योकि उनका पुरुषार्थ नष्ट होकर जिन्दा रहने की इच्छा भी मर जाती है। यदि जज लिण्डसे को यह पता न होता तो मानसरोग-चिकित्सको से

उन्हे मालूम हो जाता कि जवानी मे विषयेन्द्रिय को भडकाने मे युवक शराबी, चोर-लुटेरे और निठल्ले बन जाते है। यदि जज लिण्डसे की बुद्धि मारी न गयी होती तो भला क्या वह यह लिखते कि पुरुष की विषयेच्छा तृप्त करना और उसकी वेश्या बनना स्त्री का धर्म है ?

एक ही उपाय

इन अक्ल के दुश्मनो को कौन समझाये कि प्रजा में जन्म-मृत्यु की वृद्धि बहुत बढ जाने पर उसे रोकने का सिर्फ एक ही उपाय है—और वह है, विषय-भोग से निवृत्ति ? इन लोगो की आंखें यह क्यो नही देख सकती कि पशुओ में यही उपाय अमोघ है ? ये लोग इस बात को क्यो नही समझते कि इन कृत्रिम साधनो से स्त्रियाँ वेश्या और कुपथ-गामिनी हो जाती है और पुरुष नपुंसक हीजडे बनते है ?

स्वास्थ्य के लिए विषय-भोग आवश्यक है, इस भ्रम को दूर करना प्रत्येक डाक्टर और अनुभवी सलाहकार का फर्ज है। मैं अपने अनुभव और अनेक डाक्टरो से विचार-विनिमय के बाद कहता हूँ कि कई वर्षों तक विषय-भोग न करने से कुछ भी हानि नहीं होती, उल्टे बेहद लाभ होता है। कितने ही जवानो में जो उछलता हुआ उत्साह और प्रकाश-मान तेज दिखाई पडता है, वह उनके विषय-भोग का नहीं बल्कि उनके सयम का फल है। हरेक पुरुषार्थी मनुष्य जाने-अनजाने इस सूत्र का पालन करता है। विषय-वासना की तृप्ति में खर्च की जानेवाली शक्ति पुरुषार्थ-सिद्धि मे आसानी से लगायी जा सकती है, और जितना ज्यादा शक्ति का सयम होगा उतनी ही ज्यादा सिद्धि होगी।

मनुष्य कई सदियो से कीमिया की तलाश में भटकते है। इस सूत्र मे जो कीमिया भरा है वैसा और कहाँ मिलेगा ?

स्त्रियों का कर्त्तव्य

स्त्रियो को भी जागृत और सावधान होने की जरूरत है। उन्हे यह दृढ निश्चय करना चाहिए, कि हम पुरुषो के विषय का साधन नही है, और ऐसे साधन के रूप मे इस्तेमाल किये जाने का सख्त विरोध करना चाहिए। पुरुष कमाकर उन्हे खिलायें, उसके लिए इतना उपद्रव क्यो ? वे घर-गृहस्थी चलाये, बच्चो को पाले-पोषे, उन्हे शिक्षित बनाये, घर को प्रसन्नतामय कर दें, बच्चो और पति को चैतन्यवान बनादे, और अपने खिलते हुए पुत्र-पुत्रियो को सुमार्ग पर लगाये रहे—इससे ज्यादा स्त्री का कर्त्तव्य और क्या हो सकता है ? और इस कर्त्तव्य के बदले मे तो स्त्रियो को पुरस्कार दिये जाने चाहिएँ, उनके लिए खास सुविधाएँ कर देनी चाहिएँ।

ब्रह्मचारिणी जोन

जैसे पुरुष विषयेच्छा को पुरुषार्थेच्छा मे बदल सकता है, वैसे ही स्त्री भी कर सकती है। महान् आदर्शों को सामने रखकर अपने यौवन-धन, अपने तमाम आकर्षण को लेकर वे भारी-से-भारी पुरुषार्थ कर सकती है। इतिहास मे ऐसा सबसे ऊँचा आदर्श देवी जोन (जोन आफ आर्क) का है। उसमे उसके निष्कलक कौमार्य, उसके निर्मल ब्रह्मचर्य के सिवा दूसरा कौन-सा बल था ? फ्रास में १५ वी सदी मे कैसी भयकर स्थिति फैली हुई थी ! चारो तरफ दारिद्रय, दु ख और दुष्टता का साम्राज्य था। फ्रेंच सेना अग्रेज सेना से बराबर हार-ही-हार खाती आ रही थी। सैनिक नि सत्त्व और निर्वीर्य थे। फ्रास मे ढेरो मुर्दे पडे हुए सडते थे, राजा भाग गया था, और स्त्रियो में शील जैसी कोई चीज नही रही थी। ऐसे समय जोन आफ आर्क नामक अशिक्षित किन्तु महाशूरवीर

और वुद्धिमान कुमारी आगे आयी। लोग यह नहीं मानते थे कि वह पवित्र होगी, सब यही खयाल करते थे कि फ्रांस की अन्य हजारों कन्याओं-जैसी ही यह भी होगी। सोलह वर्ष की लडकी क्या अखण्ड कुमारी रह सकती है?

उसके कौमार्य की जांच करने के लिए एक कमीशन विठाया गया; लेकिन उसका दावा सही सिद्ध हुआ। तब वुद्धिमान लोगों ने उसे चाँदी का बख्तर पहनाया और सेना के आगे उसे रक्खा, और उसने मानो विजली डाल दी हो इस तरह मौत का भय छोडकर उसकी सेना लडी। उसके ब्रह्मचर्य का लोगों पर अजीव प्रभाव पडा। साहस-हीनों में भी पुरुषत्व आया और कई वर्षों से होनेवाली लडाई का अन्त इने-गिने दिनों में होगया तथा अंग्रेजों को फ्रांस छोड देना पडा। इतिहास में ऐसी और कोई घटना नहीं मिलती। परन्तु आज जो प्रवाह वह रहा है उसके अनुसार अगर स्त्री विषय का ही भाजन वने, पुरुष उसे भ्रष्ट ही करते रहे, सन्तानोत्पत्ति रोकनेवाले कृत्रिम साधनों का सर्वत्र प्रचार हो जाये, तो जो सत्यानाश होगा उसे दूर करने के लिए फिर देवी जोन जैसी किसी ब्रह्मचारिणी तपस्विनी की ही आवश्यकता होगी। जो पन्द्रहवीं सदी की उस वीरांगना के ही समकक्ष होगी।

और सभी स्त्रियाँ चाहे जोन न हों, भले ही वे पवित्र विवाह-सम्बन्ध स्थापित करलें, परन्तु उस हालत में भी वे जीवन की पवित्रता को कायम रक्खें, उसे वेश्यापन न वना डालें, माता का धर्म समझें और पुरुषों के पुरुषार्थ को प्रेरित करनेवाली शक्ति वनें।

उपसंहार

यह इस सुन्दर पुस्तक का सार है। पहली पुस्तक का सार करीब-करीब शब्दश: भाषान्तर था। यह सार भाषान्तर नहीं है, वल्कि लेखक

के भावो का साराश है। सारी पुस्तक मे जो कुछ कहा गया है वह भाव इस महामन्त्र मे आ जाता है—"**मरण बिन्दुपातेन जीवन बिन्दुधारणात्।**" और देवी जोन के ज्वलन्त दृष्टान्त जैसे उदाहरण हमारे यहाँ वैधव्य को अखण्ड ब्रह्मचर्य से सुशोभित करनेवाली मीराबाई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा अहल्याबाई होलकर मे, और सारे जीवन को कौमार्य यानी ब्रह्मचर्य से सुशोभित करनेवाली दक्षिण-भारत की साध्वियो अव्वै तथा आण्डाल मे मिलते है।

: ३ :

जितेन्द्रियता और कामुकता

स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का विषय बडा उत्कृष्ट है, क्योकि ज़ाहिरा तौर पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इसका हमसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, और जल्दी या देर मे यह सबके विचारो को प्रवृत्त कर लेता है, फिर भी सारी मनुष्य-जाति इस बारे मे खामोश ही रहती है—कम-से-कम स्त्री-पुरुष तो एक-दूसरे से छिपाव करते ही है। इस प्रकार सारे मानवी तथ्यो मे से एक सबसे अधिक रोचक तथ्य इतना छिपा रहता है कि बडे-से-बडे रहस्य को भी मात कर देता है। ऐसे छिपाव और भय के साथ इसको लिया जाता है मानो निश्चय ही यह किसी धर्म मे नही है। मेरा विश्वास है कि अत्यन्त घनिष्ठ मित्रो मे भी आमतौर पर ऐसा नही होता कि इससे सम्बन्धित आनन्द और चिन्ताओ की एक-दूसरे से चर्चा करे, और प्रेम की बाह्य बाते— उसकी खुशी व चिन्ताएँ—गुप्त ही रक्खी जाती है। भावोन्मत्त लोग भी इसकी चर्चा करते हुए

इतना अतिरंजन नहीं करते जितना कि सारी मनुष्य-जाति इसके बारे में खामोश रहकर इसे तूल देती है। यह बात नहीं कि वे सोचते हों, कि इसपर या अन्य किसी विषय पर आदमी को तभी कुछ कहना चाहिए जबकि कोई खास बात कहने के लिए हो, बल्कि, साफ बात तो यह है कि इस विषय में मनुष्य की शिक्षा मुश्किल से शुरू हुई है—जिसके कारण, शुद्ध पारस्परिक प्रेम बहुत कम पाया जाता है।

किसी पवित्र समाज में तो ऐसा न होगा कि आदर-भाव से नहीं किन्तु शर्म के मारे विवाह के विषय की अक्सर उपेक्षा की जाये, उसे नजर-अन्दाज किया जाये, और सिर्फ उसका इशारा ही किया जाये, बल्कि स्वाभाविक और सरल रूप में उसे लिया जायेगा—सभवत, ऐसे ही दूसरे रहस्यों की तरह उसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जायेगा। क्योंकि अगर इसमें ऐसी शर्मनाक बात हो कि जिसके मारे इसकी चर्चा ही न की जा सके, तो फिर भला इसको अमल में कैसे लाया जा सकता है? लेकिन, निस्सन्देह, इसमें जितनी प्रत्यक्ष देखने में आती है उससे कहीं ज्यादा पवित्रता और अपवित्रता है।

मनुष्य विवाह का विचार करते हुए आम तौर पर उसमें कम-से-कम थोड़ी काम-वासना का ख़याल जरूर करते हैं, लेकिन दुनियाभर में हरेक प्रेमी उसकी अकल्पनीय पवित्रता में विश्वास करता है।

अगर यह शुद्ध-पवित्र प्रेम का परिणाम हो, तो विवाह में कामुकता जैसी कोई बात हो ही नहीं सकती। पवित्रता नकारात्मक नहीं बल्कि किसी कदर स्वीकारात्मक ही है। विवाहितों का तो यह खासकर गुण है। विषय-भोग के या नीचे दर्जे के जितने आनन्द हैं वे ऊँचे दर्जे के आनन्द के सामने टिकने ही नहीं चाहिएँ। जो ऊँचे बनकर मिलते हैं वे नीचे दर्जे के काम कर ही नहीं सकते। किसी व्यक्ति विशेष के

किन्ही कामो की बनिस्बत प्रेम से प्रेरित होकर किये हुए काम निश्चय ही कम शकाजनक होते है, क्योकि इनका आधार अत्यन्त विरल पारस्परिक सम्मान पर होने के कारण स्त्री और पुरुष एक-दूसरे को लगातार अधिक-से-अधिक ऊँचे एव पवित्र जीवन की ओर बढने के लिए प्रोत्साहित करते है, और जिस कार्य मे वे परस्पर सम्बद्ध है वह निश्चय ही पवित्र और श्रेष्ठ होना चाहिए, क्योकि निर्दोषिता और पवित्रता का कोई मुकाविला नही कर सकता। इस सम्वन्ध में हम ऐसे व्यक्ति के साथ व्यवहार करते है जिसका धार्मिक रूप में हम अपने से भी ज्यादा सम्मान करते है, और, इसलिए यह जरूरी है कि हम उसके साथ अपना आचरण ऐसा ही रक्खे मानो हम जो कुछ कर रहे है वह सब खुद ईश्वर की ही विद्यमानता मे कर रहे है। भला किसी प्रेमी के लिए अपने प्रियतम से अधिक और किसकी मौजूदगी ज्यादा भयजनक हो सकती है ?

अगर आप प्रेम की उष्णता को भी उसी तरह पाना चाहे जैसे कि विल्ली-कुत्ते तथा आलसी आदमी आग को गले लगाते है, क्योकि आपका तापमान आलस्य के कारण कम रहता है, तो आप पतन के रास्ते पर है और आलस्य मे और गहरे ही गरकाव होते जायेगे। इससे अच्छा तो सूरज का वह शीतल प्रेम है जो तुपार और वर्फ से छन-छनकर खेत में आता है, या उसकी वह गर्मी है जो किसी नि शब्द ठण्डी घाटी मे मिले। दिव्य प्रेम की गर्मी कम नही होती, वल्कि उसका आनन्द उठानेवाले को साहस और वल प्रदान करती है। आपको चाहिए कि अँगीठी पर झुककर नही, वल्कि स्वास्थ्यप्रद व्यायाम के द्वारा अपने शरीर को गर्मी पहुँचाये। अपनी आत्मा को स्वतन्त्र रूप से श्रेष्ठ सुकृत करके गर्मी पहुँचाये, अपने उन साथियो की जघन्य सहानु-

भूति प्राप्त करके नही कि जो आपसे किसी कदर ऊँचे नही है। मनुष्य के सामाजिक और आध्यात्मिक अनुशासन को अपने शारीरिक अनुशासन से मेल खाना चाहिए। उसे जैसे सोने के लिए सख्त विस्तर चाहिए वैसे ही आश्रय ऐसे आदमी का लेना चाहिए जो दिल का मजबूत हो। शरीर को उत्तेजन देने के लिए जो शराव वह पिये वह ठण्डे पानी के सिवा और कुछ न हो। इसी प्रकार चाटुकारी की मीठी-मीठी वनावटी नही वल्कि शुद्ध और ताज़गी देनेवाली वाते ही उसे सुननी चाहिएँ। उसे चाहिए कि रोज झरने के पानी की तरह शीतल सत्य के नीर मे अवगाहन करे, और मित्रो की सहानुभूति की गर्मी प्राप्त करे।

क्या प्रेम दुराचार का किंचित भी सहयोगी हो सकता है ? हम एक दूसरे से प्रेम तो करे, पर एक-दूसरे से चिपटकर नहीं वल्कि दूर-दूर रहकर। प्रेम और विपयेच्छा एक-दूसरे से वहुत दूर की चीजे है। एक अच्छी है, दूसरी बुरी। प्रेम करनेवाले जव अपने ऊँचे गुणो से प्रेरित होकर सहानुभूतिपूर्ण हो, तो वह प्रेम है, लेकिन यह खतरा तो है ही कि पारस्परिक सहानुभूति मे कही वे अपने हीन गुणो से प्रेरित न हो। जहाँ ऐसा हुआ नही कि वही विपयेच्छा है। यह आवश्यक नही कि निश्चयपूर्वक ही ऐसा किया जाये, या जानते-बूझते हुए भी ऐसा हो, लेकिन, जहाँ प्रेम का निकट-सम्पर्क हुआ नही कि वहाँ यह खतरा रहता ही है कि कही हम एक-दूसरे को अपवित्र करके कलक लगाकर भ्रष्ट न कर दे—क्योकि, जव हम आलिगन करे तो पूरी तरह लिपटे विना नही रह सकते।

जो हमारा प्रिय मित्र हो, उसे हमको इतना ज्यादा प्यार करना चाहिए कि वह हमारे उन्ही विचारो मे हमारे साथ हो जो पवित्र-से-पवित्र

और शुद्ध-से-शुद्ध हो। जब ऐसी पवित्रता न हो, या अपवित्रता हो, तो समझना चाहिए कि "हमारा सयोग हमारे पतन के लिए हुआ है", हालाँकि हमें इसका पता नही रहता।

प्रेम का भोग—बस, इसीमे खतरा है। हमारे प्रेम मे तो कुछ ऐसा ओज और वीरत्व होना चाहिए, जैसा कि शरद-कालीन प्रभातकाल में होता है। सभी राष्ट्रो के धर्म मे एक ऐसी पवित्रता का निर्देष किया गया है जिसको, मुझे शक है, मनुष्य ने कभी प्राप्त नही किया है। हमे एक-दूसरे को प्यार करना चाहिए, पर सिर पर नही चढा लेना चाहिए। जो प्रेम हमारे गुण-दोषो को नही देखता, वह हमें नीचे ही गिराता है—हमारा अध पतन—करता है। हमे तो अपने अच्छे-से-अच्छे और शुद्ध-से-शुद्ध प्रेम-सम्बन्धो पर भी जागरूक रहने की जरूरत है, नही तो उन-पर कोई धब्बा लगने का भय है। हमे तो ऐसा प्रेम करना चाहिए, जिससे कि उसके लिए हमे पछताने का मौका कभी न आये।

इस कामुकता के ही कारण भाषा को कितने अर्थगर्भित प्रतीको से हाथ नही धो लेना पडा है? फूल, जो अपनी अनन्त सुषमा और सुगन्ध के द्वारा पौधे का विवाहोत्सव मनाते है, मनुष्य के फूलने का मौसम आने पर समस्त सच्चे विवाहो के मुक्त और असदिग्ध सौन्दर्य के प्रतीक बनाये गये है।

कुमारी का कौमार्य भी एक खिलता हुआ फूल ही है, जो अपवित्र विवाह से नष्ट हो जाता है। जो भी कोई फूलो से प्रेम करता है, वह कौमार्य और सदाचार का प्रेमी है। प्रेम और विषयेच्छा तो एक-दूसरे से इतनी दूर की चीजे है जैसे पुष्प-वाटिका वेश्यालय से।

जे० बीवर्ग 'एमोनिटेट्स बोटानिका' मे, जिसका सम्पादन लिन्नियस ने किया है, लिखते है—

"जननेन्द्रियाँ पशुओ में तो ज्यादातर प्रकृत रूप से पोशीदा ही है, मानो वे शर्म की चीज हो, लेकिन वनस्पतियो में वे ऐसी खुली हुई है कि सबकी आँखो के सामने रहती है, और जब पौधो का विवाह-समारोह होता है, तो आश्चर्य की बात है कि दर्शको को वे कितना अधिक आनन्द पहुँचाते है, अपनी सुन्दर-से-सुन्दर छवि और मीठी-से मीठी खुशबू से उन्हे तरोताजा कर देते है, और, इसी समय, चहचहाती हुई सुन्दर चिडियो को तो जाने दो, मधुमक्खियाँ तथा कीडे-मकोडे तक अपने मधुकोष में से मधु निकालते और क्षीण पराग में से मोम इकट्ठा करते है।" लिन्नियस खुद ही कली की प्यालानुमा पोशिश को 'थालामस' यानी 'वधू-गृह' कहता है और फूल की अन्दर की पखडी को 'ओलियम' यानी उसका परदा, और इस तरह फूल के हरेक भाग की व्याख्या करने लगता है।

हमारी दुर्भावनाओ के सिवा भला और कौन यह जानता है कि वे कही खुद फूलो को ही तो नही बिगाड देंगी, उनकी सुगन्ध और सुन्दर छवि से उन्हे वचित करके उनके विवाह को छिपाने लायक शर्म और अपवित्रता मे तो परिणत नही कर देंगी ? अभीभी फूल विविध जातियो के है, और एक फूल ऐसा भी है जिसके विवाह-सम्बन्ध जून में होते है और नीची जमीनो को दुर्गन्ध से भर देते है।

विभिन्न वर्गो के, स्त्री-पुरुष के, जिस सहवास की मैने कल्पना की है, वह इतना सुन्दर है कि जिसकी हम कल्पना भी नही कर सकते, और इतना अच्छा है कि याद भी नही रहता। मैने उसके बारे मे सोचा तो है, पर मेरा जो अनुभव है वह बहुत क्षणिक है और वह फिर प्राप्त नही किया जा सकता। यह बडी अजीब बात है कि मनुष्य चमत्कार, जादू, प्रेरणा आदि के बारे में इस तरह बाते करते है मानो यह सब हो चुका है, जबकि प्रेम मौजूद रहता है।

सच्चा विवाह किसी भी प्रकार समुज्ज्वलता से भिन्न नहीं है। सच तो यह है कि जब कोई युवा अपनी व्याही हुई कुमारी का आलिंगन करता है तो उसमें एक दिव्य आनन्द आता है—ऐसा हर्षोन्माद कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सच्चे विवाह का चरम-आनन्द इसके साथ अभिन्न एकाकार हो जाता है।

आश्चर्य नहीं कि ऐसे संयोग से ही, उसके चरमरूप में नहीं बल्कि उसके साथ-साथ, मनुष्यों की अमर जाति का उद्‌भव होता है। निश्चय ही गर्भाशय एक अत्यन्त उर्वर भूमि है।

किसीने पूछा है, कि क्या मनुष्य की नस्ल नहीं सुधारी जा सकती—अर्थात्, क्या पशुओं की तरह उनकी भी उत्पत्ति नहीं की जा सकती? मैं कहता हूँ कि प्रेम को शुद्ध होने दो, फिर देखो कि और सब बातें अपने-आप होजायेंगी। इस प्रकार, शुद्ध प्रेम ही निस्सन्देह दुनिया की सब बुराइयों का रामबाण इलाज है।

सन्तानोत्पत्ति का एक मात्र प्रयोजन विकास ही है। पुनरावृत्ति से कुदरत को घृणा है। पशु तो सिर्फ अपनी ही संख्या बढ़ाते हैं; पर श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों के बच्चे उसी प्रकार उनसे ऊँचे दर्जे के होंगे, जैसे कि उनकी आकांक्षाएँ ऊँची होती हैं। तू तो उनके फल से ही उन्हें जानेगा।